प्रवासी जीवन और 'अन्तर्वंशी' उपन्यास : एक अध्ययन

PRAVASI JEEWAN AUR 'ANTARVANSHI' UPANYAS : EK ADHYAYAN

A Dissertation submitted to the University of Hyderabad in partial fulfilment of the degree of

MASTER OF PHILOSOPHY

In

HINDI

By

SHASHI SHARMA

20HHHL14

2020-2022

Department of Hindi

School of Humanities

University of Hyderabad

Hyderabad – 500046

Telangana

India

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **“PRAVASI JEEWAN AUR ‘ANTARVANSHI’ UPANYAS : EK ADHYAYAN” (प्रवासी जीवन और ‘अन्तर्वंशी’ उपन्यास : एक अध्ययन)** submitted by **SHASHI SHARMA** bearing Regd. No. **20HHHL14** in partial fulfilment of the requirements for the award of **MASTER OF PHILOSOPHY in HINDI** is a bonafide work carried out by her under my supervision and guidance.

As for as I know, this dissertation is free from plagiarism and has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for award of any degree or diploma.

Signature of Supervisor

Prof. SACHIDANANDA CHATURVEDI

Head of the Department

Prof. GAJENDRA KUMAR PATHAK

Dean of the School

Prof. V. KRISHNA

DECLARATION

I**, SHASHI SHARMA (**Registration no.- **20HHHL14)** hereby declare that the dissertation entitled **"PRAVASI JEEWAN AUR 'ANTARVANSHI' UPANYAS : EK ADHYAYAN" (प्रवासी जीवन और 'अन्तर्वंशी' उपन्यास : एक अध्ययन)** submitted by me under the guidance and supervision of Prof. **SACHIDANANDA CHATURVEDI** a bonafide plagiarism free research work. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my dissertation can be deposited in shodhganga/Inflibnet.

Shashi Sharma

Date: 12-12-2022

Signature of Student

SHASHI SHARMA

Regd. No. 20HHHL14

भूमिका

प्रवासी साहित्य ने हिंदी साहित्य जगत को अनुभव का एक नया आकाश प्रदान किया तथा अपनी संवेदनात्मक रचनाधार्मिता के जरिये साहित्य-जगत् में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई। इस साहित्य से जुड़े सभी प्रश्नों के उत्तर हमें प्रवासी रचनाकारों की रचनाओं में मिलते हैं। प्रवासी लेखन का फलक विस्तृत होता जा रहा है। यह साहित्य केवल हिंदी भाषा में ही नहीं अपितु अन्य भाषाओं में भी लिखा जा रहा है। हिंदी के प्रवासी साहित्य का अपना वैशिष्ट्य है, जो उसकी संवेदना, जीवन दृष्टि तथा परिवेश में परिलक्षित होता है।

प्रवासी साहित्य किसी वाद अथवा विचारधारा से प्रभावित न होकर प्रवासजनित परिस्थितियों व प्रवासी रचनाकारों के अनुभवों का प्रतिफलन है। यही इस साहित्य की विशेषता है। इसी विशेषता के कारण यह भारत में रचे जा रहे हिंदी साहित्य से विलक्षण प्रतीत होता है। प्रवासी हिंदी साहित्य मॉरीशस, फीजी, सूरीनाम, दक्षिण अफ्रीका, कनाडा, नॉर्वे, अमेरिका और लंदन आदि देशों में लिखा जा रहा है। इन देशों के रचनाकार प्रवासी भारतीयों के जीवन संघर्ष और प्रवास से जुड़ी समस्याओं को आधार बनाकर लिखते हैं। हिंदी साहित्य की बहुचर्चित लेखिका उषा प्रियंवदा लगभग पाँच दशक से अमेरिका में रह रही हैं। प्रवासी साहित्यकारों में भी उनकी विशिष्ट पहचान है। उन्होंने अपने साहित्य-लेखन में प्रवासी समाज के विभिन्न पक्षों का यथार्थपरक अंकन किया है।

'अन्तर्वंशी' उपन्यास पढ़ने के पश्चात् मैंने प्रवासी साहित्य पर कार्य करने का निर्णय किया। उपन्यास में वर्णित प्रवासी जीवन का संघर्ष और मोहभंग, पाश्चात्य समाज में वैवाहिक संबंध, भारतीय और पाश्चात्य जीवन मूल्य के बीच टकराहट, भारतीय और पाश्चात्य संस्कृति के बीच मिसफिट होते भारतीय आदि कई प्रसंगों ने मुझे इस विषय पर कार्य करने के लिए प्रेरित किया। भारतीय समाज में युवकों के बीच अमेरिका जाने तथा विदेशों में रह रहे युवकों से विवाह करने का प्रचलन दिखाई पड़ता है। ऐसे में उषा प्रियंवदा का यह उपन्यास प्रासंगिक हो जाता है।

शोध-विषय की स्पष्टता एवं सुगमता हेतु प्रस्तुत शोध प्रबंध को प्रस्तावना एवं उपसंहार के अतिरिक्त चार अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय 'प्रवास और प्रवासी साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन' से संबंधित है जिसमें प्रवास शब्द का अर्थ बताते हुए प्रवास के कारक, प्रवास का इतिहास और वर्तमान तथा प्रवास के दौरान भोगे जाने वाले संकटों के बारे में बताया गया है और प्रवासी साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय अध्याय उषा प्रियंवदा के व्यक्तित्व और रचना संसार से संबंधित है। इस अध्याय में उषा प्रियंवदा के व्यक्तित्व से जुड़े विभिन्न पहलुओं पर दृष्टिपात करते हुए उनकी साहित्यिक यात्रा को प्रभावित करने वाले विभिन्न पक्षों का अध्ययन व विश्लेषण किया गया है और साथ ही उनकी समस्त रचनाओं का कथ्यगत सार बताया गया है।

तृतीय अध्याय प्रवासी कथा साहित्य और उषा प्रियंवदा पर केंद्रित है। इस अध्याय में मॉरीशस, फीजी, ब्रिटेन और अमेरिका में लिखे गए प्रवासी कथा साहित्य की विशिष्टताओं का उल्लेख किया गया। साथ ही उषा प्रियंवदा के लेखन की विशिष्टता से भी परिचय कराया गया है।

चतुर्थ अध्याय ‘अन्तर्वंशी’ उपन्यास प्रवासी जीवन से संबंधित है। इस अध्याय में उक्त उपन्यास में वर्णित प्रवासी जीवन के विभिन्न पहलुओं को रेखांकित करते हुए उनका अध्ययन व विश्लेषण किया गया है।

इस शोध-कार्य के दौरान मेरे मन में 'अन्तर्वंशी' उपन्यास में वर्णित कई प्रसंगों से संबंधित जिज्ञासाओं ने जन्म लिया। लेखिका को ईमेल द्वारा अपनी जिज्ञासाएँ प्रेषित कर उनका उत्तर प्राप्त किया। उन प्रश्न-उत्तरों को शोध-प्रबंध के 'परिशिष्ट' में प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत शोध-कार्य के दौरान मुझे मेरे शोध निर्देशक, हिंदी विभाग के विभागाध्यक्ष तथा विभाग के अन्य विद्वानों से पर्याप्त सहायता मिली है, जिसके लिए मैं हृदय से उनकी आभारी हूँ।

मैं अपने माता पिता और भ्राताओं की भी आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे अपना विश्वासपात्र समझा और आगे बढ़ने के लिए सदैव प्रोत्साहित किया। मैं अपने मित्रों रामानंद शर्मा, अनुपम प्रियदर्शी, अमित,

दिव्या और स्नेहदीप की भी आभारी हूँ जिन्होंने सामग्री-संकलन से लेकर, शोध प्रबंध को टंकित कराने तक मेरी सहायता की।

अंत में उन सभी लेखकों, विद्वानों और सुधीजनों का विशेष आभार जिनके लेखन से सहायक सामग्री लेते हुए शोध प्रबंध पूरा किया गया।

शशि शर्मा

अनुक्रमणिका

भूमिका

प्रथम अध्याय : प्रवास शब्द और प्रवासी साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन

1.1 प्रवास शब्द का सैद्धांतिक विवेचन

1.2 प्रवास के कारक

1.3 प्रवास के प्रकार

1.4 भारतीय प्रवासन का इतिहास और वर्तमान

1.5 प्रवासी भारतीयों की श्रेणियाँ

1.6 प्रवास के दौरान भोगे गए संकट

1.7 प्रवासी साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन

द्वितीय अध्याय : उषा प्रियंवदा का व्यक्तित्व और रचना संसार

1. उषा प्रियंवदा का व्यक्तित्व

1.1 जन्म, बचपन और पारिवारिक परिवेश

1.2 शिक्षा-दीक्षा और पुरस्कार

1.3 वैवाहिक जीवन

1.1 उषा प्रियंवदा का रचना संसार

1.1 कहानी संग्रह

1.1.1 फिर बसंत आया

1.1.2 ज़िन्दगी और गुलाब के फूल

1.1.3 एक कोई दूसरा

1.1.4 कितना बड़ा झूठ

1.1.5 शून्य तथा अन्य रचनाएँ

1.1.6 मेरी प्रिय कहानियाँ

1.1.7 सम्पूर्ण कहानियाँ

1.1.8 बनवास

1.1.9 प्रतिनिधि कहानियाँ

1.2 उपन्यास

1.2.1 पचपन खम्बे लाल दीवारें

1.2.2 रुकोगी नहीं राधिका

1.2.3 शेषयात्रा

1.2.4 अंतर्वंशी

1.2.5 भया कबीर उदास

1.2.6 नदी

1.2.7 अल्पविराम

तृतीय अध्याय : प्रवासी हिंदी कथा साहित्य और उषा प्रियंवदा

1.1 मॉरिशस के प्रमुख हिंदी कथा कथाकार और उनकी कृतियाँ

1.2 फीजी के प्रमुख हिंदी कथाकार और उनकी कृतियाँ

1.3 ब्रिटेन के प्रमुख हिंदी कथाकार और उनकी कृतियाँ

1.4 अमरीका के प्रमुख हिंदी कथाकार और उनकी कृतियाँ

1.5 प्रवासी कथा साहित्य में उषा प्रियंवदा का स्थान

चतुर्थ अध्याय : 'अंतर्वंशी' उपन्यास में प्रवासी जीवन का अध्ययन

1.1 प्रवास में स्त्री

1.2 प्रवासी जीवन में संघर्ष और मोहभंग की स्थिति

1.3 पाश्चात्य संस्कृति व मूल्यों का प्रभाव

1.4 अकेलापन और अजनबीपन का एहसास

1.5 दाम्पत्य संबंधों के बदलते आयाम

1.6 समलैंगिकता

1.7 स्थानीय नागरिकता हेतु विवाह को माध्यम बनाना

1.8 नॉस्टेल्जिया

1.9 संबंधों में स्थायित्व का आभाव

1.10 अर्थ का जीवन में महत्व

उपसंहार

परिशिष्ट

संदर्भ ग्रन्थ सूची

प्रथम अध्याय

प्रवास और प्रवासी साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन

भूमिका

'प्रवास' शब्द मनुष्य की गतिशीलता का बोधक है। ऐतरेय ब्राह्मण में मनुष्य की गतिशीलता से जुड़ा एक मन्त्र दिया गया है। वह मन्त्र इस प्रकार है-

"चरैवेति चरैवेति

चरन् वै मधु विन्दति, चरन् स्वादुमुदुम्बरम्।

सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं, यो न तन्द्रयते चरन्।

चरैवेति चरैवेति"[1]

इस मंत्र से आशय है, मनुष्य को सदैव गतिशील होना चाहिए। गतिशील मनुष्य ही सदा मधु पाता है। चलता हुआ मनुष्य ही स्वादिष्ट फल चखता है… इसलिए चलते रहो, चलते रहो।

'प्रवास' अन्य जीवों के समान ही मानव जीवन का भी शाश्वत सत्य है। स्थिरता जड़त्व है और गति जीवन। रुकना जड़ होना है। मनुष्य का जीवन गतिशील है। व्यक्ति अपनी बाल्यावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक प्रवासन की क्रिया से गुजरता है। व्यक्ति के संचरण की शुरुआत सबसे पहले उसके घर से होती है और घर से होती हुई गाँव, शहर और आवश्यकतानुसार विदेश गमन तक होती है। मानव-जीवन के प्रवास का सूत्र भी इसी मूलभूत सिद्धांत में निहित है। जीवन के चरम लक्ष्य, जिनको पाने के लिए व्यक्ति सदैव गतिमान रहता है कई प्रकार के होते हैं, परंतु सर्वसाधारण लक्ष्य सुखी और स्थिर जीवन की प्राप्ति है। इसी ध्येय की प्राप्ति के लिए जब मनुष्य गतिमान होता है तो उसे 'प्रवासी' कहते हैं।

आमतौर पर प्रवासन एक भौगोलिक सीमा से दूसरी भौगोलिक सीमा में जाकर बसने की प्रक्रिया को कहा जाता है। मानव-सभ्यता के इतिहास से ही प्रवासन की क्रिया को देखा जा सकता है। मनुष्य ने अपनी यात्रा स्थानांतरणीय कृषि से शुरू की थी और आज वह व्यवस्थित, अतिविकसित और समृद्ध

---

[1]एतरेय ब्राह्मण 3/33/5

बसाहटी सभ्यता का स्वामी बन चुका है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में विचार करें तो हम पायेंगे कि ईसा से 2500 वर्ष पूर्व भारत में मिलने वाली सबसे प्राचीन सभ्यता सिंधु घाटी सभ्यता जो केवल सिंधु घाटी में ही नहीं गुजरात, राजस्थान और महाराष्ट्र में भी पायी गयी है, प्रवासन को सिद्ध करती है। अनेक विद्वानों का मानना है कि आर्यों का भी उत्तरी ध्रुव से या पामीर के पठार से भारत में प्रवास हुआ। उनका केवल प्रवास ही नहीं हुआ उन्होंने अपनी संस्कृति के प्रसार के लिए प्रवास भी किया। हम मिथकों में भी प्रवासन की क्रिया को देख सकते हैं। ईसा पूर्व 600 से 300 'रामायण' और 'महाभारत' की कथाओं में भी प्रवास के अनेक उदाहरण मिलते हैं। बिन्ध्य के दक्षिण सुदूर दंडकारण्य में अगस्त्य तथा अन्य ऋषियों का निवास अपनी संस्कृति के प्रसार के लिए प्रवास का अन्यतम् उदाहरण है। जातक कथाओं, यूरोपीय साहित्य, अरबी साहित्य, रूसी साहित्य आदि में ऐसे अनेक मिथकीय पात्र हैं जिन्होंने देशाटन किया। "यद्यपि ऐतिहासिक काल में दिग्विजय, धर्म और संस्कृति के प्रचार-प्रसार, सुख-सुविधा प्राप्ति या व्यापार ही प्रवास के कारक रहे जबकि आधुनिक काल में अठाहरवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में औद्योगिकीकरण की लहर के कारण पूरे विश्व में नगरीय प्रवास की प्रक्रिया अधिक गतिशील हुई। भारत में अंग्रेज़ी राज्य के साथ यह औद्योगिकीकरण आया और इसने यहाँ भी आप्रवास और नगरीकरण को प्रोत्साहित किया।"[2] इसमें कोई दोराय नहीं कि नगरीकरण की प्रक्रिया बड़े शहरों के विकास के लिए सबसे महत्वपूर्ण कारक रही है। भारतीय जनगणना 1971 के अनुसार भारत में 1951 से 1971 के बीच चार करोड़ सत्तर लाख की आबादी विभिन्न शहरों में बढ़ी जिसमें से करीब 40 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों से नगरों में प्रवास के कारण बढ़ी है।

प्रस्तुत अध्याय में 'प्रवास' क्या है ? इसका संक्षित परिचय कराया जाएगा। प्रवास / आप्रवास / उत्प्रवास आदि पदों का अर्थ बताते हुए अंतर बताया जाएगा। साथ ही प्रवास के कारक और प्रकार पर चर्चा करते हुए प्रवासी भारतीयों की श्रेणियाँ बताते हुए, प्रवासियों द्वारा भोगे गए संकट और प्रवासी हिंदी साहित्य की संक्षिप्त सैद्धान्तिकी पर प्रकाश डाला जाएगा।

---

[2] पाण्डेय, प्रेमप्रकाश: अप्रवासी श्रमिक पृ. सं. 05

1.1 प्रवास शब्द का सैद्धांतिक विवेचन

'प्रवास' करने के कारण ही व्यक्ति 'प्रवासी' कहलाता है। मूलतः 'प्रवास' संस्कृत भाषा का शब्द है। संस्कृत शब्दकोश में वामन शिवराम आप्टे लिखते है, "प्रवासः [प्र+वस्+घञ्] विदेशगमन, विदेश यात्रा, घर पर न रहना, परदेश निवास"[3] वाचस्पत्यम् शब्दकोश के अनुसार "प्रस्थितस्य वासः इति प्रवासः"[4] अर्थात् प्रस्थिति का वास या निवास ही प्रवास कहलाता है।

हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा प्रकाशित शब्दकोश में भी प्रायः यही अर्थ दिया गया है "प्रवास-पुं. [सं.प्र+वस्(बसना)घञ] 1. अपनी जन्मभूमि छोड़कर विदेश में जाकर किया जानेवाला वास। 2. यात्रा, सफ़र। 3.विदेश। प्रदेश"[5] फादर कामिल बुल्के आदि विद्वानों ने प्रवास के लिए "इमीग्रेशन"[6] शब्द का प्रयोग किया है।

यहाँ प्रवास के साथ 'प्रवासी' शब्द का अर्थ जानना भी जरूरी है। अपने मूल स्थान से अलग किसी अन्य स्थान पर जाकर बसने वाला व्यक्ति 'प्रवासी' कहलाता है, ‘"प्रवासी' पद 'प्र'- उपसर्गपूर्वक वस् धातु से इन (णिनीँ) प्रत्यय के योग से बना है जिसका अर्थ है प्रवास करने वाला, प्रवसतीति प्रवासी। यह भी मूलतः संस्कृत का शब्द है जिसका प्रातिपदिकीय रूप है -'प्रवासिन्'। यानी 'प्र+वस् में कृदन्त प्रत्ययों में से 'णिनीँ का विधान करने पर बनता है- 'प्रवासिन्'। इसे इस रूप में समझा जा सकता है, प्र+वस्+णिनीँ > प्र+वास्+इन् >'प्रवासिन्' = प्रवासी"[7]

---

[3] आप्टे, वामन, शिवराम: संस्कृत शब्दकोष, पृ. सं. 590

[4] वाचस्पत्यम भाग – 06 पृ. सं. 4492

[5] मानक हिंदी कोश, भाग-03, पृ. सं. 636

[6] बुल्के, फादर कामिल: अंग्रेजी-हिंदी कोश, पृ. सं. 241

[7] स्नातक, डॉ. सुरेन्द्र देव: लघुसिद्धांत कौमुदी, पृ. सं. 241

हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से प्रकाशित शब्दकोश में भी यही अर्थ स्वीकार किया गया है "प्रवासी (सिन्)-वि०[सं. प्रवास+ इनि] [स्त्री० प्रवासिनी] जो प्रवास में हो।"[8] तारानाथ तर्कवाचस्पति भट्टाचार्य ने प्रवासी का अर्थ लिखा है "विदेश वासी (विदेश में रहने वाला)"[9]

प्रवास की प्रक्रिया मानव विकास के साथ जुड़ी हुई है। इस प्रक्रिया का समाज-वैज्ञानिक अध्ययन उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से दिखाई पड़ता है। सबसे पहले प्रवास के नियमों को राबेन्सटाइन ने परिभाषित किया था। उनके बाद कई समाजशास्त्री हुए जिन्होंने प्रवास के विविध रूपों, कारकों, आयामों और प्रक्रियाओं का विवेचन किया।

समाजशास्त्री दुर्खीम ने प्रवास को "श्रमविभाजन और विशिष्टीकरण का मूलभूत कारण माना है।"[10]

"वाइनवर्ग ने व्यक्ति के एक स्थान से दूसरे स्थान को स्थायी रूप से अथवा किसी बड़ी कालावधि के लिए चले जाने को आप्रवास कहा है।"[11]

"बघेल ने प्रवास को परिभाषित करते हुए उसमें व्यक्ति के एक स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान पर जाने, वहाँ स्थायी तौर से निवास करने परंतु मूल स्थान से संपर्क बनाए रखने को अंतर्निहित माना है।"[12]

अंग्रेज़ी शब्दकोश में 'प्रवास' की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है- "A diaspora is a large group of people with a similar heritage or homeland who have since moved out to places all over the world"[13]

यहाँ 'डायस्पोरा' शब्द का स्पष्टीकरण जरूरी है। हिंदी का पद 'प्रवास' अंग्रेज़ी के 'Diaspora' का हिंदी पर्याय है। "वास्तव में हिंदी शब्द 'प्रवासन' की तुलना में 'डायस्पोरा' शब्द प्राचीन है। यह शब्द मूलतः ग्रीक भाषा का है। शब्दशास्त्र की दृष्टि से डायस्पोरा या Diaspora को ग्रीक भाषा के 'Diaspora' शब्द

---

8 मानक हिंदी कोश, भाग-03, पृ. सं. 636

9 वाचस्पत्यम, भाग-06, पृ. सं. 4492

10 पाण्डेय, प्रेमप्रकाश: अप्रवासी श्रमिक, पृ. 01

11 वही पृ. 01

12 पाण्डेय, प्रेमप्रकाश: अप्रवासी श्रमिक, पृ. 01

13 Diaspora – defination, meaning and synonym

से लिया गया है। संधि विच्छेद करने पर यह शब्द इस प्रकार है : 'Dia' और 'Sperian' का "बीजों का बोना, छितराना या बिखेरना, फैलाना" आदि। यह एक अनन्त क्रिया है। मूलतः इस शब्द का प्रयोग ईसा पूर्व 586 में यहूदियों के 'बेबिलोनिया से निष्कासन' के संदर्भ में किया गया था।"[14]

प्रवास की प्रक्रिया के बारे में प्रेम प्रकाश पाण्डेय जी लिखते हैं - "प्रवास की क्रिया को इस तरह से समझा जा सकता है- "किसी व्यक्ति का एक स्थान से दूसरे स्थान तक किसी बड़ी अवधि के लिए जाना। यद्यपि 'स्थान' और 'समय' के प्रत्यय को परिभाषित करना सरल नहीं है। 'प्रवास अंतर्राष्टीय, अन्तर्राजीय अथवा अन्तरक्षेत्रीय हो सकता है। यह ग्रामीण से ग्रामीण, ग्रामीण से नगरीय, नगरीय से विदेशों में हो सकता है। इसी प्रकार यह कुछ समय के लिए भी हो सकता है। कुछ समाज-वैज्ञानिक एक वर्ष या अधिक अवधि के लिए होने वाले स्थानांतरण को प्रवास मानते हैं तो कुछ समाज-वैज्ञानिक स्थायी रूप से किये गए स्थानांतरण को प्रवास मानते हैं।"[15] प्रवास के संदर्भ में 'सर्कुलेशन' शब्द का प्रयोग भी होता है। "'सर्कुलेशन' से तात्पर्य है व्यक्ति द्वारा अन्य स्थानों पर घूमते हुए पुनः अपने मूल स्थान को लौट जाना। लेकिन 'प्रवास' और 'सर्कुलेशन' के बीच की सीमा रेखा तय कर पाना मुश्किल है क्योंकि कई वर्षों तक किसी दूसरे परिवेश में निवास के बाद व्यक्ति अपने मूल स्थान लौटेगा या नहीं इसका निर्णय करना परिस्थिति पर निर्भर करता है तथा सदैव परिवर्तनीय है।"[16]

उषा राजे सक्सेना 'प्रवासी' शब्द को इस प्रकार परिभाषित करती हैं- 'प्रवासी' शब्द 'प्रवास' का विशेषण है। प्रवासी एक मनोविज्ञान है, एक अंतर्दृष्टि है जिसे स्वतः 'फ़ार्मूयूलेट' होने में बरसों- बरस लगते हैं। एक तरह से प्रवासी वे कलमें है जो अपने पेड़ से कटी हुई टहनियाँ होने के बावजूद बरसों बरस किसी और मिट्टी-खाद-पानी में अपनी जड़ें रोपती हुई अपना बहुत कुछ खोने और नया कुछ उस भूमि से लेने

---

14 जोशी, रामशरण (संपा): भारतीय डायस्पोरा : विविध आयाम, पृ. सं. 15

15 पाण्डेय, प्रेमप्रकाश: अप्रवासी श्रमिक पृ. सं. 02-03

16 पाण्डेय, प्रेमप्रकाश: अप्रवासी श्रमिक पृ. सं. 02-03

पाने के साथ अपने अंदर की गहराइयों में नई ऊर्जा सृजित करती हुई चेतना की कोंपले विकसित करती हैं।"[17]

यहाँ प्रवासन (migration), आप्रवासन (immigration) और उत्प्रवासन (emigration) शब्दों के मध्य अंतर बताना जरूरी है। प्रवासन एक ऐसा पद है जो अपने साथ कई पदों को साथ लेकर चलता है। व्यापक संदर्भ में एक होते हुए भी इन शब्दों के अर्थ भिन्न हैं। “आमतौर पर 'प्रवासन' एक भौगोलिक सीमा से दूसरी भौगोलिक सीमा में जाकर बसने की क्रिया को कहा जाता है 'आप्रवासन' किसी व्यक्ति द्वारा अपना देश छोड़कर किसी दूसरे देश में जाकर बसने की क्रिया को कहते हैं, जहाँ की वह नागरिकता न रखता हो। इसके विपरीत 'उत्प्रवासन' किसी व्यक्ति द्वारा उस भौगोलिक इकाई को छोड़ देने की क्रिया को कहते हैं जिसका वह मूल निवासी होता है। उदाहरण के लिए अगर कोई व्यक्ति भारत छोड़कर ब्रिटेन चला जाए और वहाँ का नागरिक बन जाए तो वह ब्रिटेन का आप्रावसी और भारत का उत्प्रवासी होगा।"[18]

प्रवास शब्द मनुष्य की गतिशीलता का बोधक है। मानव-सभ्यता के इतिहास से ही प्रवासन की क्रिया को देखा जाता रहा है। ऐतिहासिक काल में व्यक्ति ने धर्म और संस्कृति के प्रचार-प्रसार तथा स्थानांतरणीय कृषि करने के लिए अपनी यात्रा शुरू की थी और आधुनिक काल में अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में औद्योगिकीकरण की लहर के कारण पूरे विश्व में नगरीय प्रवास की प्रक्रिया तेजी से बढ़ी। मनुष्य जब सुख-सुविधाओं से लेस जीवन जीने के लिए एक भौगोलिक सीमा से दूसरे भौगोलिक सीमा में स्थानांतरण करता है तो उसे प्रवासी कहते हैं।

1.2 प्रवास के कारक

प्रवास के विविध कारण हो सकते हैं जिन्हें बृहत रूप से दो संवर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

---

[17] राय, विभूतिनारायण: प्रवासी विशेषांक, वर्तमान साहित्य (पत्रिका), पृ. सं. 69

[18] Migration- to migrate means to move from one place to other, sometimes part of a back-and-forth patternz and sometimes to stay. Immigrate is to come into another country to live permanenty. Emigration means to leave one’s county to live in another.

1. **प्रत्याकर्षक कारक (Push Factors)**

प्रत्याकर्षक कारक वे कारक हैं जो किसी व्यक्ति को उसके मूल स्थान को छोड़ने के लिए बाधित करते हैं। भारत में कई लोग ग्रामीण से नगरीय क्षेत्रों में मुख्यतः गरीबी, बेरोज़गारी, सीमित रोज़गार के साधन, निम्न जीवन स्तर, कृषिभूमि पर जनसंख्या के अधिक दबाव, भौगोलिक कारक, स्वास्थ्य सुविधाओं एवं शिक्षा जैसी आधारभूत असंरचनात्मक सुविधाओं के कारण प्रवास करते हैं। इन कारकों के अतिरिक्त बाढ़, सूखा, चक्रवर्ती तूफान, भूकंप, सुनामी जैसी प्राकृतिक आपदाएँ और युद्ध तथा स्थानीय संघर्ष भी प्रवास के प्रत्याकर्षक कारक हैं।

2. **आकर्षक कारक (Pull Factor)**

वे कारक जो किसी व्यक्ति या समाज को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिए आकर्षित करते हैं, ऐसे कारक आकर्षक कारक कहलाते हैं। व्यक्ति अच्छे अवसरों की तलाश में प्रवास करता है। वह उन स्थानों पर प्रवास करता है जहाँ उसे अच्छा रोजगार, बेहतर शिक्षा, उन्नत जीवन स्तर, अच्छी जलवायु, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाएँ, यातायात एवं संचार के नवीनतम साधन प्राप्त हो सके। व्यक्ति औद्योगिक एवं नगरीय केंद्रों के आकर्षण, सामाजिक संरचना में ऊँची पदस्थिति की आकांक्षा के कारण भी प्रवास करता है।

उपरोक्त कारकों ने स्थान और समय के अनुसार प्रवास की गति को प्रभावित किया है। आज़ादी के पूर्व और कुछ पश्चात् तक विश्व के विभिन्न उपनिवेशों में भारतीयों के प्रवास के पीछे प्रत्याकर्षक कारकों की भूमिका अधिक रही लेकिन 1970 के बाद से प्रवास के कारक बदल गए। लोगों ने बेहतर सुविधाओं के लिए प्रवास किया। इक्कीसवीं सदी में डायस्पोरा या प्रवासन की परंपरागत अवधारणा और परिभाषा में समयानुकूल परिवर्तन हुआ है। 1970 के दशक में पश्चिमी एशिया में इसलिए लोगों ने प्रवास किया क्योंकि उन देशों का जीवन स्तर भारत से बेहतर था। इसी तरह भूमंडलीकरण के बाद विकसित देशों की ओर आकर्षण और बढ़ा। लोगों ने अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए पश्चिमी देशों में प्रवास किया।

इस संदर्भ में रामशरण जोशी का कथन उल्लेखनीय है- "प्रवासन एक प्रकार से 'प्रभाव' (इफ़ेक्ट) है, न कि कारण। कारण और प्रभाव समाज या देश विशेष की विकास अवस्था निर्धारित करते हैं। इसका संबंध 'माँग' और 'आपूर्ति' से भी रहता है। स्थानीय दबाव, राज्य का व्यवहार, आकर्षण के केंद्रों, सुखद और समृद्ध जीवन की आकांक्षा जैसे कारक (फैक्टर) प्रवासन की प्रक्रिया, स्वरूप और दिशा को निर्धारित करते हैं। कभी स्वेच्छापूर्वक खोज और आविष्कार की इच्छा, जीवनयापन, बदलाव निष्कासन, नस्ल और रंगभेद, नस्ली जनसंहार आदि के कारण प्रवासन हुआ करता था अथवा डायस्पोरा का निर्माण होता था। आज उच्च प्रौद्योगिकीय दक्षता, शोध अनुसंधान सुविधा, श्रेष्ठ व्यावसायिकतावाद (प्रोफेशनलिज़्म), नवनिर्मित श्रम, कौशल, राजनीतिक उथल-पुथल और प्रतिशोध जैसे कारक प्रवासन की पृष्ठभूमि रचते हैं।"[19] हमें यह भी समझना होगा कि आज का डायस्पोरा "उन्नीसवीं सदी की अभिशप्त, प्रताड़ित और शोषित मानवता नहीं है। आधुनिक डायस्पोरा उत्तर-औपनिवेशिक और साम्राज्यवादी काल में राष्ट्र-राज्य (नेशन-स्टेट) के निर्माण और संचालन में निर्णायक भूमिका निभा रहा है। यह उत्तर-औपनिवेशिक और वैश्वीकृत डायस्पोरा इन राष्ट्र-राज्यों में नया सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक नेतृत्व प्रदान कर रहा है।"[20]

प्रवास के मुख्यतः दो कारक हैं प्रत्याकर्षक और आकर्षक कारक। प्रत्याकर्षक कारक के तहत व्यक्ति रोज़गार, दैनिक जीवन से जुड़ी मूलभूत आवश्यकताओं और प्राकृतिक आपदाओं के कारण विवश होकर प्रवास करता है और आकर्षक कारक के तहत व्यक्ति स्वेच्छा से बेहतर अवसरों की तलाश में सुख-सुविधाओं से भरा पूरा जीवन जीने के लिए विकसित देशों में प्रवास करता है।

1.3 प्रवास के प्रकार

प्रवास के कई प्रकार हो सकते हैं। वैज्ञानिकों ने भिन्न-भिन्न संदर्भों में प्रवास के प्रकारों का वर्णन किया है। सामान्य तौर पर 'प्रवास' को चार प्रकार में वर्गीकृत किया जा सकता है-

---

[19] जोशी, रामशरण: भारतीय डायस्पोरा : विविध आयाम, पृ. सं. 16

[20] जोशी, रामशरण: भारतीय डायस्पोरा : विविध आयाम, पृ. सं. 17

1. स्वैच्छिक प्रवास

व्यक्ति द्वारा स्वेच्छा से किया गया प्रवास स्वैच्छिक प्रवास कहलाता है। प्रायः यह देखा जाता है कि किशोरावस्था तक आते-आते प्रतिभाशाली विद्यार्थी अपने वरिष्ठों, प्रवासी व्यक्तियों, जनसंचार के माध्यमों से नगरों एवं महानगरों की आर्थिक व्यवस्था, शैक्षणिक व्यवस्था एवं रोजगार के बेहतर अवसरों के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं। फलस्वरूप समय आने पर वे अपने सपनों को पूरा करने की चाहत लिए स्वेच्छा से प्रवास करते हैं।

2. बाध्यकारी प्रवास-

बाध्यकारी प्रवास संरचना विशेष में उत्पन्न हुई अप्रकार्यकारी व्यवस्था के कारण उत्पन्न होता है। प्रायः ग्रामीण संरचना में ऐसा देखा जाता है कि व्यक्ति रोजगार और मनोनुकूल परिस्थितियों के अभाव में मूल स्थान को छोड़ने के लिए विवश होता है। ग्रामीण निवासी बेहतर सुविधाओं एवं लाभकारी रोजगार व्यवस्था प्राप्त करने के लिए विवश होकर प्रवास करते हैं।

3. परंपरागत प्रवास-

परंपरागत प्रवास वह प्रवास है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपनाया जाता है। भारत के संदर्भ में यदि देखा जाए तो ग्रामीण संरचना में 'कमाने जाने' की प्राचीन परंपरा रही है। गाँवों में या पिछड़ी जगहों पर समुचित स्वास्थ्य,रोजगार तथा शिक्षा व्यवस्था के अभाव में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के लोग आज भी परंपरागत प्रवास को अपनाते हैं।

4. अप्रत्याशित प्रवास-

आकस्मिक और अनाहूत अवसर के कारण किया गया प्रवास अप्रत्याशित प्रवास कहलाता है। विज्ञापनों द्वारा नौकरी मिलने पर, शिक्षा के क्षेत्र में दाखिला मिलने पर, आपदा के कारण अपनाया गया प्रवास अप्रत्याशित प्रवास कहलाता है।

अतः प्रवास को चार प्रकार में विभाजित किया गया है- स्वेच्छिक, बाध्यकारी, परंपरागत और अप्रत्याशित प्रवास। स्वेच्छा से किया गया प्रवास स्वेच्छिक प्रवास कहलाता है तो मूलभूत आवश्यकताओं तथा सुख-सुविधाओं के आभाव में किया गया प्रवास बाध्यकारी प्रवास कहलाता है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी लोगों द्वारा अपनाया गया प्रवास परंपरागत प्रवास कहलाता है और आकस्मिक तथा अनाहूत कारणों से किया गया प्रवास अप्रत्याशित प्रवास कहलाता है।

1.4 भारतीय प्रवासन का इतिहास और वर्तमान

भारतीय प्रवासन के इतिहास और वर्तमान को देखें तो हम पायेंगे कि इतिहास में भारत से बहुत बड़ी संख्या में लोगों ने कभी मजबूरी में तो कभी बेहतर अवसरों की तलाश में विभिन्न स्थानों पर विशेष रूप से मध्य पूर्व और पश्चिमी यूरोप के देशों, पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों में प्रवास किया।

उपनिवेश काल के दौरान अंग्रेजों द्वारा उत्तर प्रदेश और बिहार से मॉरिशस, कैरेबियन द्वीपों (त्रिनिदाद, टोबैगो और गुयाना), फ़िजी और दक्षिण अफ्रीका; फ्रांसीसियों और जर्मनों द्वारा रीयूनियन द्वीप, गुआडेलोप, मार्टिनिक और सूरीनाम में, फ्रांसीसी तथा डच लोगों और पुर्तगालियों द्वारा गोवा, दमन और दीव से, अंगोला, मोंजाबिक व अन्य देशों में विशेष 'एग्रीमेंट' के तहत लाखों श्रमिकों को रोपण कृषि में काम करने के लिए भेजा गया। ऐसे सभी प्रवास (भारतीय उत्प्रवास अधिनियम) 'गिरमिट एक्ट' नामक अनुबंध के तहत आते थे। इन गिरमिटिया मजदूरों की दशाएँ दासों से भी बदतर थी।

प्रवासियों की दूसरी तरंग ने नूतन समय में व्यवसायियों, शिल्पियों, व्यापारियों और फैक्ट्री मजदूरों के रूप में आर्थिक अवसरों की तलाश में निकटवर्ती देशों थाईलैंड, मलेशिया, सिंगापुर, इंडोनेशिया, ब्रुनई, इत्यादि देशों में व्यवसाय के लिए प्रवास किया और आज भी लोग इन देशों में जा रहे हैं। 1970 के

दशक में पश्चिमी एशिया में तेल वृद्धि के कारण अर्ध-कुशल और कुशल श्रमिकों की माँग के कारण नियमित बाह्य प्रवास हुआ। इन लोगों की स्थिति गिरमिटिया मजदूरों से बेहतर थी।

प्रवासियों की तीसरी तरंग में डॉक्टरों, अभियंताओं (1960 के बाद) प्रोफ़ेसर, प्रबंधन परामर्शदाताओं, वित्तीय विशेषज्ञों, संचार माध्यम से जुड़े व्यक्तियों और (1980 के बाद) अन्य समाविष्ट थे, जिन्होंने संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, यूनाइटेड किंगडम, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और जर्मनी आदि देशों में प्रवास किया। इन लोगों ने अधिक अर्थोपार्जन, सुविधाओं के उपभोग, बेहतर अवसरों की तलाश में प्रवास किया। उदारीकरण के पश्चात् 90 के दशक में शिक्षा और ज्ञान आधारित भारतीय उत्प्रवासियों ने भारतीय प्रसार को विश्व के सर्वाधिक शक्तिशाली प्रसार में से एक बना दिया। इस संदर्भ में रामशरण जोशी का कथन उल्लेखनीय है- "उन्नीसवीं सदी के प्रवासी भारतीय के रूप की इक्कीसवीं सदी में यथावत पुनरावृति नहीं हो सकती। डेढ़ सौ वर्ष पहले भारतीय विशेषतः उत्तर भारतीय, गुलाम या अनुबंधित अर्ध-दास के रूप में समुद्र पार गए थे, यद्यपि इस यथार्थ को नकारा नहीं जा सकता कि खाड़ी देशों में मौजूद भारतीय श्रमिक डायस्पोरा की जीवन-स्थितियाँ अपेक्षित रूप से सुखद नहीं हैं, फिर भी उन्नीसवीं सदी के डास्पोराओं से बेहतर हैं। लेकिन आज इक्कीसवीं सदी में भारतीय एक स्वतंत्र भारतीय नागरिक, अनुबंधित श्रमिक, प्रोफ़ेशनल, शिक्षार्थी और विद्यार्थी के रूप में जा रहे हैं। यह परिघटना भारत की ही नहीं, बल्कि इसका आकार वैश्विक स्तर का बन चुका है।"[21] आज उत्तर औद्योगिककालीन डायस्पोरा भी अस्तित्व में आ चुका है। विश्व परिदृश्य तेजी से बदल रहा है। नए प्रकार के राष्ट्र-राज्य जन्म लेने की प्रक्रिया में तेजी से बढ़ रहे हैं।

प्रवासी भारतीयों का इतिहास औपनिवेशिक काल से प्रारम्भ होकर अब तक जारी है। प्रवासी भारतीयों की स्थिति समयानुसार बदलती रही। औपनिवेशकालीन प्रवासित लोगों की स्थिति अत्यंत त्रासद थी। वे लोग विशेष प्रकार के एग्रीमेंट के तहत गिरमिटिया मजदूर के रूप में मॉरीशस, फीजी, सूरीनाम, दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में बहला-फुसला कर ले जाए गए। स्वाधीनता के पश्चात् लोगों ने

---

[21] जोशी, रामशरण: भारतीय डायस्पोरा : विविध आयाम, पृ. सं. 25

शिल्पियों, व्यवसायिओं, व्यापारियों तथा फैक्ट्री मजदूरों के रूप में थाईलैंड, मलेशिया, सिंगापुर आदि देशों में प्रवास किया और भूमण्डलीकरण के दौरान लोगों ने बेहतर अवसरों की तलाश में उच्च पदों पर कार्य करने के लिए डॉक्टर, इंजीनियर, प्रोफेसर, प्रबंधन परामर्शदाता, वित्तीय विशेषज्ञ के रूप में अमेरिका, कनाडा, ब्रिटेन, ऑस्ट्रेलिया आदि देशों में प्रवास किया और लगातार कर रहे हैं।

1.5 प्रवासी भारतीयों की श्रेणियाँ

सामान्यतः प्रवासी भारतीयों को तीन श्रेणियाँ में रखा जा सकता है। पहली श्रेणी 'अनिवासी भारतीय' (Non Resident Indian - NRI) की है। 'अनिवासी भारतीय' का अर्थ ऐसे नागरिकों से है जो भारत के बाहर रहते हैं और भारतीय नागरिक हैं। 'अनिवासी भारतीय' का दर्जा उन्हें दिया जाता है जो वित्तीय वर्ष के दौरान लगभग 182 दिन भारत में रहे हों या पिछले चार वर्षों में कम से कम 365 दिन तक रहे हों और संबंधित वर्ष में 60 दिनों तक रहे हों। 'अनिवासी भारतीय' शिक्षा, रोजगार, व्यवसाय, अवसरों की तलाश में भारत से प्रवास करते हैं और अन्य देशों में जाकर कुछ समय के लिए या अनिश्चित अवधि तक निवास करते हैं। यह शब्द निश्चित रूप से विदेशी भूमि पर रह रहे व्यक्ति की सम्पन्नता का सूचक है।

दूसरी श्रेणी में वे लोग आते हैं जिन्हें 'भारतीय मूल के व्यक्ति' (Person of Indian Origin) की संज्ञा दी गई है। 'भारतीय मूल के व्यक्ति' से तात्पर्य विदेशी नागरिक (पाकिस्तान, बांग्लादेश, अफ़ग़ानिस्तान, चीन, भूटान, श्रीलंका और नेपाल को छोड़कर) से है जो किसी भी समय में भारतीय पासपोर्ट धारक हो या उस व्यक्ति के माता-पिता या पितामह भारत में जन्में हों या भारत शासन अधिनियम 1935 के प्रभावी होने से पूर्व भारत के नागरिक हों या इस अवधि के बाद किसी क्षेत्र का भारत का अभिन्न अंग बनने से पूर्व वहाँ के निवासी हों।

तीसरी श्रेणी में वे लोग आते हैं जिन्हें 'भारतीय विदेशी नागरिकता' (Overseas citizen of India - OCI) प्राप्त है। यह योजना 2 दिसंबर 2005 को लागू की गई। गृह मंत्रालय ओसीआई को एक ऐसे व्यक्ति के रूप में परिभाषित करता है जो 26 जनवरी, 1950 को या उसके बाद भारत का नागरिक

था; या उस तारीख पर भारत का नागरिक बनने योग्य था; या 15 अगस्त 1947 के बाद भारत का हिस्सा बने किसी क्षेत्र से संबंधित था और बाद में वह विदेश जाकर बस गया हो। ओसीआई भारतीयों को पासपोर्ट के अलावा ओसीआई कार्ड भी रखना अनिवार्य होता है। विदेशी नागरिकता प्राप्त करने के बाद भी उस व्यक्ति को भारत आगमन पर वीज़ा की आवश्यकता नहीं होती।

प्रवासी भारतीयों की तीन श्रेणियाँ हैं। पहली श्रेणी में अनिवासी भारतीय आते हैं जो भारत के बाहर रहते हैं तथा जो वित्तीय वर्ष के दौरान लगभग 182 दिन भारत में रहे हों या पिछले चार वर्षों में 365 दिन तक रहे हों और संबंधित वर्ष में 60 दिनों तक रहे हों। दूसरी श्रेणी में भारतीय मूल के व्यक्ति आते हैं जो भारतीय पासपोर्ट धारक हों या जिनके माता-पिता या पितामह भारत की नागरिकता रखते हों या भारतीय शासन अधिनियम 1935 के प्रभावी होने से पूर्व भारत के नागरिक हों। तीसरी श्रेणी में भारतीय विदेशी नागरिक आते हैं जो 26 जनवरी, 1950 को या उसके बाद भारत की नागरिकता रखते हों या 15 अगस्त, 1947 के बाद भारत का हिस्से बने किसी क्षेत्र से संबंधित हों और बाद में विदेश जाकर बस गये हों।

1.6 प्रवास के दौरान भोगे गए संकट

एक प्रवासी व्यक्ति अपने प्रवास के दौरान किस प्रकार के संकटों का सामना करता है इसका उल्लेख संक्षेप में नीचे किया गया है –

1.6.1 सामाजिक संकट

देश हो अथवा विदेश, मनुष्य के जीवन में समाज की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। प्रवास धारण करने के पश्चात् प्रवासी व्यक्ति एक नए समाज से परिचित होता है तो वह उसकी तुलना अपने मूल समाज के साथ करता है। प्रत्येक समाज की अपनी कई विलक्षणताएँ होती हैं, जिन्हें एक प्रवासी व्यक्ति विभिन्न स्तरों पर अनुभव करता है। उसके अपने समाज और अपनाए हुए देश के समाज की संरचनाएँ

तथा उसमें व्याप्त अंतर उसके मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डालते हैं। प्रवास के दौरान प्रवासी अपने मूल समाज के साथ खड़ा दृष्टिगोचर होता है तो कभी स्वयं को प्रवासी समाज का अंग स्वीकार करता है। प्रवासी समाज में विचरण करते हुए उसे पारिवारिक विघटन, पीढ़ीगत अंतर व टकराव, वृद्ध प्रवासियों की समस्याएँ, अकेलापन, बेगानापन, अंतर्जातीय विवाह, अंतर नस्लीय विवाह, विवाहेतर सम्बन्ध, स्थायी नागरिकता हेतु विवाह को माध्यम बनाना, नस्लवाद, नशे की समस्या, आवास की समस्या, प्रवासी बच्चों की शिक्षा की समस्या, मिश्रित नस्ल के बच्चों की समस्या, जातिगत भेदभाव, क्षेत्रवाद की भावना, नॉस्टेल्जिया, लिव-इन-रिलेशनशिप, समलैंगिकता, सम्बन्धों में स्थायित्व का अभाव, समयाभाव जैसे विभिन्न मुद्दों से जुड़ी समस्यों का सामना करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त प्रवासी स्त्रियों को मानसिक शोषण, आर्थिक शोषण, जैसी विभिन्न समस्याओं व उनके प्रभावों को झेलना पड़ता है। समग्र प्रवासी साहित्य पर दृष्टिपात किया जाए तो प्रवासी समाज से जुड़ी ये समस्याएँ सम्पूर्ण प्रवासी साहित्य के केंद्र में दिखाई देती हैं, जिन्हें प्रवासी व्यक्ति और समाज भोगता ही नहीं अपितु इनके विरुद्ध यत्र-तत्र विरोध भी प्रकट करता है। समग्रतः प्रवासी साहित्य में सामाजिक पक्ष का महत्वपूर्ण स्थान है और रचनाकारों ने सामाजिक पक्ष को बहुत व्यापक स्तर पर चित्रित किया है।

1.6.2 सांस्कृतिक संकट

सांस्कृतिक पक्ष प्रवासी-जीवन की केंद्रीय धुरी है। व्यक्ति संसार के किसी भी कोने में निवास करे, परंतु उसके मन में अपनी संस्कृति के प्रति विशेष मोह, लगाव, प्रेम-भाव बना ही रहता है। प्रवासी व्यक्ति की भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थितियाँ चाहे बदल जायें, परन्तु उसके मन के भीतर अपनी संस्कृति के प्रति निष्ठा-भाव ज्यों-का-त्यों बना रहता है। यही निष्ठा-भाव प्रवासी व्यक्ति को संस्कृति के प्रति जागरूक रखने के साथ-साथ उसे संस्कृति के साथ जोड़कर रखता है। इसके साथ ही यहाँ यह तथ्य ध्यातव्य है कि विदेशी धरा पर रहते हुए प्रवासी व्यक्ति स्थानीय समाज की संस्कृति व अपने मूल देश की संस्कृति का विविध पक्षों के आधार पर निरंतर मूल्यांकन व तुलना करता रहता है। इस संदर्भ में

जया शर्मा का कथन उल्लेखनीय है। वे लिखती हैं- "अपनी मातृभूमि में रहने वाले दूसरे भाइयों से अलग आप्रवासी मेज़बान देश की सामाजिक, सांस्कृतिक परिदृश्य की अपने देश की सामाजिक, सांस्कृतिक भूमि से निरंतर तुलना करते हैं और इन्हीं सामाजिक, सांस्कृतिक विचार-दृष्टियों से वे अपने गृहभूमि की संस्कृति का प्रस्तुतिकरण करते हैं और अपनी मेज़बान संस्कृति के मायने समझते हैं और इस प्रकार अपनी कहानियों में प्रवासी रचनाकार 'भारत' और 'भारतीयता' का पुनर्निर्माण करते चलते हैं।"[22] यहाँ यह भी ध्यान देने की बात है कि जहाँ पहली पीढ़ी के प्रवासी अपनी संस्कृति के प्रति विशेष मोह रखते हैं, वहीं दूसरी पीढ़ी अपनी संस्कृति से विमुख दिखाई पड़ती है।

1.6.3 आर्थिक संकट

समाज के रूप का निर्धारक तत्व मुख्यतः 'अर्थ' ही है। 'अर्थ' समाज के सम्पूर्ण दृश्य को बदलने का सामर्थ्य रखता है। प्रवास के प्रमुख कारणों में 'आर्थिक कारण' अन्य कारणों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हैं। मुख्यतः कमज़ोर आर्थिक स्थिति ही 'प्रवास' की नींव तैयार करती है। अपनी मातृभूमि पर निवास करते समय व्यक्ति विदेशों के सम्बन्ध में सुनहरे सपने देखता है और घर की आर्थिक उन्नति में सुधार हेतु प्रवास करता है। लेकिन प्रवास धारण करने के पश्चात् उसका सामना समाज की विकट परिस्थितियों से होता है, जो उसके आर्थिक संघर्ष को तीव्र कर देतीं हैं। इस स्थिति के संदर्भ में डॉ. अकाल अमृत कौर लिखती हैं- "जिन कामों को वे भारत में रहते हुए करना निम्न समझते हैं, यहाँ आकर ऐसे कामों के लिए वे दिन-रात मेहनत करते हैं। केवल आर्थिक पक्ष से मजबूत होने के लिए। अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए मशीन के साथ मशीन होते हुए, अतिरिक्त समय लगाते हुए, पूँजीवादी विकसित देशों में विचरण कर रहे भारतीय मज़दूरों को कठिन परिश्रम करना पड़ता है, जिसे सामान्य स्त्री-पुरुष सहर्ष स्वीकार नहीं करते। यह आर्थिक पक्ष प्रवासी के जीवन का समूचा आधार है, जो प्रवासी के जीवन में से

[22] शर्मा, जया: प्रवासी हिंदी लेखन में नौस्टेल्जिया बनाम यथार्थ, आलोचना (पत्रिका), पृ. सं. 43

पैदा हुई अत्यंत पीड़ादायक स्थितियों और समस्याओं का कारण है।"[23] अतः प्रवासी समाज में आर्थिकता से संबंधित विभिन्न मुद्दे हैं, जो प्रवासी व्यक्ति के जीवन को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। प्रवासी साहित्यकारों ने प्रवासी साहित्य में जीवन में अर्थ का महत्व, जीविकोपार्जन के तथाकथित निम्नस्तरीय व उच्चस्तरीय साधनों, आर्थिक मंदी, प्रवासी भारतीयों के शोषण, सम्बन्धों पर बढ़ते आर्थिक दबाव, अर्थोपार्जन हेतु अवैध प्रवास आदि आर्थिक समस्याओं को सूक्ष्मता से चित्रित किया है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रवास के मूल में कहीं-न-कहीं 'अर्थ' ही सर्वप्रमुख कारण है।

1.6.4 मनोवैज्ञानिक संकट

एक देश से दूसरे देश में प्रवासी के रूप में रह रहे व्यक्ति को सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक संकट के साथ ही मनोवैज्ञानिक संकट का सामना करना पड़ता है। अपने मूल देश को छोड़कर अपनाये हुए देश में पहुँचकर वह व्यक्ति पहले तो प्रवासी की श्रेणी में गिना जाता है दूसरा वह खुद को अकेला और उन लोगों के बीच अजनबी महसूस करता है। उसकी भाषा, संस्कृति, परिवेश पीछे छूट जाती है और वह नए परिवेश में अनजान लोगों के बीच खुद को मिसफिट महसूस करता है। प्रत्येक समाज की कुछ विलक्षणताएँ होती हैं, जिसे एक प्रवासी व्यक्ति विभिन्न स्तरों पर महसूस करता है। मेजबान देश आसानी से प्रवासियों को स्वीकार नहीं करते। वर्ग, रंग, नस्ल, क्षेत्र, भाषा, जेंडर, संस्कृति हर स्तर पर उन्हें पराया महसूस कराया जाता है। कुछ प्रवासी लोग अपनी संस्कृति को नकार कर अपनाये गए देश की संस्कृति में खुद को खपा डालते हैं तो कुछ पहली पीढ़ी के लोग हैं जो न तो अपने मूल देश के हो पाते हैं और न ही अपनाये हुए देश के, ऐसे में वे दो संस्कृतियों के बीच मनोवैज्ञानिक संकट का सामना करते हैं।

1.6.5 अस्मितामूलक संकट

[23] कौर, डॉ. अकाल अमृत: प्रवासी पंजाबी नावल दा इतिहास, पृ. सं. 43

प्रवास के दौरान व्यक्ति 'आइडेंटिटी क्राइसिस' की समस्या से भी जूझता है। प्रवासी व्यक्ति मिसफिट होने की मानसिक विडंबना के शिकार हो जाते हैं। हर समय उन्हें एक ही प्रश्न कचोटता है कि वे कौन हैं? उनकी पहचान क्या है? प्रवासी लेखिका सुषम बेदी 'अस्मिता' के संदर्भ में कहती हैं- "प्रवासी साहित्यकारों का जो एक बहुत ही मौलिक मुद्दा है, जो उनका बड़ा सरोकार है, वो है अस्मिता का सवाल कि मैं कौन हूँ? ये सवाल आपकी मूलभूत अस्मिता से जुड़े होते हैं और बहुत हद तक आपको और आपकी सोच को प्रभावित करते हैं।"[24] राजेंद्र यादव 'अस्मिता' को मानसिक संरचना के रूप में परिभाषित करते हुए कहते हैं, "अस्मिता अपनी निजी पहचान के साथ-साथ उस क्षेत्र और समाज के पहचान की भी है जो हमारे संदर्भ तय करते हैं। ये संदर्भ जाति, रंग, वर्ग, नस्ल, क्षेत्र, भाषा, जेंडर, पेशे इत्यादि के रूप में हमारे अंतरंग (साइकी) के हिस्से हैं।"[25] ऐसे में प्रवासी व्यक्ति को अपनी अस्मिता का संकट सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न के रूप में दिखाई पड़ता है।

प्रवासी व्यक्तियों को मूल स्थान छोड़कर अन्य स्थान पर बसने के दौरान कई तरह के संकटों का सामना करना पड़ता है जिनमें सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, अस्मिता सम्बन्धी संकट प्रमुख हैं। नयी ज़मीन और नए परिवेश में जाने के पश्चात् प्रवासित व्यक्ति स्वयं को अजनबी और अकेला महसूस करता है। प्रत्येक समाज की अपनी विलक्षणताएँ होती हैं, जिसे प्रवासी व्यक्ति विभिन्न स्तरों पर अनुभव करता है। उसके अपने समाज और अपनाए हुए देश के समाज की संरचनाएँ तथा उसमें व्याप्त अंतर उसके मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव ड़ालते हैं। प्रवास के दौरान प्रवासी अपने मूल समाज के साथ खड़ा होता है तो कभी स्वयं को प्रवासी समाज का अंग स्वीकार करता है। विदेशी धरा पर रहते हुए प्रवासी स्थानीय समाज की संस्कृति व अपने देश की संस्कृति का विविध पक्षों के आधार पर मूल्यांकन व तुलना

---

[24] नंदन, श्याम: हिंदी में लिखना एक तरह से भारत से जुड़ना है : सुषम बेदी (साक्षात्कार), प्रवासी जगत (पत्रिका), पृ. सं. 165-166

[25] यादव, राजेंद्र: कि आए कौन कहाँ से हम? (संपादकीय), यादव, राजेंद्र (सम्पादक), हँस (पत्रिका), पृ. 09

करते रहते हैं। नयी जगह और नये लोगों के बीच प्रवासी व्यक्ति अपने अस्तित्व और अस्मिता सम्बन्धी प्रश्नों को लेकर भी चिंतित रहते हुए परिस्थितियों से जूझते हुए जीवन निर्वाह करते हैं।

1.7 प्रवासी साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन

बीसवीं शताब्दी में हिंदी साहित्य विभिन्न शाखाओं में विभाजित होने लगा, दलित-विमर्श, स्त्री-विमर्श, आदिवासी-विमर्श के साथ एक नई शाखा का प्रादुर्भाव हुआ जिसे 'प्रवासी साहित्य' के नाम से जाना गया। 'प्रवासी साहित्य' अपने मूलदेश से पृथक किसी दूसरे देश में बसे हुए लोगों द्वारा रचा गया वह साहित्य है, जो अतीत के मोह में लिपटा हुआ और यथार्थ को पकड़ने के लिए प्रयासरत है। प्रवासी हिंदी साहित्य का आरम्भ मॉरीशस, सूरीनाम, गयाना, ट्रिनीडाड, फीजी, और दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में हुआ। आज हिंदी प्रवासी साहित्य अमेरिका, कनाडा, कुवैत, फ्रांस, डेनमार्क, नोर्वे, सऊदी अरब, यू. ए. ई. ब्रिटेन आदि देशों में भी लिखा जा रहा है। इस संदर्भ में डॉ. कमल किशोर गोयनका का कथन उल्लेखनीय है, वे लिखते हैं- "हिंदी भाषा और साहित्य की जड़ें चाहे स्वदेश में हों या परदेश में, वह मजबूत तभी होंगी जब उसकी शाखाएँ फूलवती और फलवती होंगी। हिंदी प्रवासी साहित्य हिंदी के विराट संसार का अंग है। उसने अपनी विशिष्ट संवेदना, दृष्टिकोण, परिस्थिति और सृजन- प्रक्रिया के कारण प्रवासी हिंदी साहित्य को एक मौलिक रूप प्रदान करके हिंदी संसार में अपना योगदान किया है। भारत में रचे जाने वाले हिंदी साहित्य से यह प्रवासी हिंदी साहित्य संवेदना, परिवेश और सरोकार में एकदम भिन्न है। इस प्रकार हिंदी प्रवासी साहित्य दो दृष्टियों से महत्वपूर्ण है- एक तो वह अपनी मौलिकता और विशिष्टता रखता है और हिंदी साहित्य में कुछ नया जोड़ता है दूसरे वह हिंदी साहित्य को वैश्विक बनाने में महत्वपूर्ण योगदान देता है।"[26]

प्रवासियों के संसार से सर्वप्रथम महात्मा गाँधी ने परिचय कराया था। वे उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में भारतीयों की मदद के लिए दक्षिण अफ्रीका गए थे। दक्षिण अफ्रीका में गाँधी जी ने

[26] गोयनका, कमल किशोर: हिंदी का प्रवासी साहित्य, पृ. सं. 15-16

भारतीय व्यापारियों और गिरमिटिया मजदूरों के स्वत्व और अधिकार के लिए आवाज़ उठायी थी। उन्होंने 'हिन्द स्वराज' पुस्तक में विस्तार से प्रवासियों की पीड़ा और अपने अनुभवों का चित्रण किया। भारतीय प्रवासियों से जुड़ने की यह पहली घटना थी जिससे विभिन्न देशों में रहने वाले गिरमिटिया बने भारतीय मजदूरों में एक नई चेतना, स्वत्व बोध तथा अपनी संस्कृति और भाषा को अक्षुण्ण बनाये रखने का भाव पैदा हुआ। पं. तोताराम सनाढ्य और बनारसीदास चतुर्वेदी १९१४ ई. से प्रवासी की त्रासदी और समस्याओं पर लिख रहे थे। पं. तोताराम सनाढ्य ने फीजी देश में भोगे हुए अनुभवों को 'फीजी द्वीप में मेरे इक्कीस वर्ष' नामक संस्मरण के माध्यम से प्रकाशित कराया। संभवतः यह प्रवासी भारतीयों के दुःख-दर्द पर लिखी गयी पहली पुस्तक थी जिसे एक प्रवासी ने स्वयं लिखा था। तत्पश्चात् पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'फीजी की समस्या', 'प्रवासी भारतीय' और 'फीजी में भारतीय' शीर्षक पुस्तकें लिखकर भारतीय मजदूरों की समस्यायों की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया। पं. रामचंद्र की पुस्तक 'फीजी दर्शन' एवं पं. अयोध्या प्रसाद की पुस्तक 'किसान संघ का इतिहास' भी फीजी के गिरमिटिया प्रवासियों के जीवन पर आधारित है।

स्वतंत्रता पूर्व भी हिंदी साहित्य की अनेकानेक विधाओं में विदेशी भूमि पर रह रहे प्रवासियों की पीड़ा का दर्द दिखाई पड़ता है। हिंदी साहित्य में सर्वप्रथम प्रवासियों के दर्द पर प्रेमचंद ने दृष्टिपात किया। 'यह मेरी मातृभूमि है' (१९०८), और 'शूद्रा' प्रेमचंद की आरंभिक कहानियाँ हैं जिसमें उन्होंने प्रवासी की पीड़ा को अभिव्यक्त किया है। 'यह मेरी मातृभूमि है' कहानी में प्रेमचंद ने एक वृद्ध व्यक्ति की अंतिम इच्छा का चित्रण किया है जो ३० वर्ष की उम्र में अमेरिका गया और ६० वर्ष विदेश में रहने के पश्चात् ९० वर्ष की उम्र में अपना शरीर त्यागने के लिए पुनः अपने देश भारत लौटना चाहता है ताकि वह अपनी अंतिम साँसें भारत में ले सके और उसकी अस्थियों का विसर्जन गंगा में हो सके। 'शूद्रा' कहानी में प्रेमचंद ने बहला-फुसला कर गिरमिटिया मजदूर के रूप में ले जाए गए प्रवासियों के दर्द का मार्मिक चित्रण किया है।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य देश और काल की सीमा का अतिक्रमण करने लगा। हिंदी के कई साहित्यकारों ने स्वतंत्रता के पश्चात् विदेश गमन किया। उनमें कुछ ऐसे साहित्यकार भी थे जो कुछ वर्ष विदेश में रहकर वापस स्वदेश लौट आए। अज्ञेय, प्रभाकर माचवे, निर्मल वर्मा, महेंद्र भल्ला, योगेश कुमार ऐसे ही साहित्यकार हैं। कुछ ऐसे भी रचनाकार हैं जो हमेशा के लिए विदेश में बस गए। ऐसे रचनाकारों में उषा प्रियंवदा, सोमावीरा, सत्येंद्र श्रीवास्तव, गौतम सचदेव, वेद प्रकाश 'वटुक', गुलाब खंडेलवाल, इंदुकान्त शुक्ल, कमला दत्त, मिनाक्षी पुरी, अचला शर्मा, उषा विजय देवी कोल्हटकर, अंजना संधीर, उषा राजे सक्सेना, अर्चना पेन्युली, दिव्या माथुर, तेजेंद्र शर्मा का नाम लिया जा सकता है जो विदेश में रहकर अपनी सृजनात्मकता के जरिये हिंदी साहित्य की सेवा कर रहे हैं। प्रवासी साहित्य के महत्व पर विचार करते हुए डॉ. बापूराव देसाई अपनी पुस्तक 'प्रवासी साहित्य का इतिहास : सिद्धांत और विवेचन' में लिखते हैं- "हिंदी प्रवासी साहित्य बहुत संपन्न, समृद्ध है। प्रवासी साहित्यकार अपनी अलग शिनाख्त बनाकर सृजनरत हैं, हम उनकी साहित्य सम्पदा को पढ़कर विदेशों के उनके अनुभवों, भावनाओं, संवेदनाओं, से जुड़ सकते हैं। इन रचनाकारों ने अपनी रचनाओं के द्वारा नीति, मूल्यों, इतिहास, मिथक सभ्यता के माध्यम से भारतीयता को सुरक्षित रखा है। हिंदी को प्रवाहित रखा, ज़िंदा रखा है। आज साहित्य सृजन, सृजनशील प्रवासियों के जीवन का महत्वपूर्ण अंग है।''[27]

प्रवासी साहित्य में अपनी मातृभूमि से अलग होने की पीड़ा को विभिन्न प्रवासी साहित्यकारों ने प्रमुखता से उद्घाटित किया है जिसे वे प्रवासी साहित्य का मूलाधार भी स्वीकार करते हैं। इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए अमेरिका की प्रवासी हिंदी कथाकार सुधा ओम ढींगरा लिखती हैं- ''प्रवास शब्द अपने मूल में विस्थापन की पीड़ा का भी बोध कराता है। प्रवासी व्यक्ति के मन में सदैव अपनी जड़ों से कटकर दूर रहने की पीड़ा कचोटती है और यही पीड़ा प्रवासी साहित्य का बीजारोपण करती है। आज धीरे- धीरे

[27] देसाई, डॉ. बापूराव, प्रवासी साहित्य का इतिहास : सिद्धांत एवं विवेचन, कानपुर : पराग प्रकाशन, 2020, पृ सं 216

यह पौधा विश्व साहित्य में एक वृक्ष के रूप में स्थापित हो चुका है और अब प्रवासी शब्द के समान ही प्रवासी साहित्य से आशय देश से बाहर रह रहे प्रवासियों द्वारा रचे साहित्य से है।"[28]

आये दिन प्रवासी साहित्य को लेकर भारत में बहस चलती रही है। कुछ भारतीय हिंदी रचनाकार प्रवासी साहित्य को दोयम दर्जे का साहित्य कहकर खारिज़ कर देते हैं तो कुछ इसे हिंदी साहित्य की मुख्य धारा का हिस्सा नहीं स्वीकारते। इस पर अपनी प्रतिक्रिया देते हुए इला प्रसाद लिखती हैं- "प्रवासी विशेषण एक विशेष प्रकार की स्थानीयता की पहचान है, जो भौगोलिक है। प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन के मौके पर भारत से बाहर के रचनाकारों को पहली बार इस सम्बोधन से सम्बोधित किया गया था। अलग विश्लेषण करने के पीछे भी मानसिकता आरम्भ में यह रही होगी कि क्योंकि यह साहित्य एक भिन्न परिवेश से आ रहा है इसकी शब्दावली, इसकी कथावस्तु, शिल्प, लेखन-शैली आदि भिन्न हो सकते हैं, इसलिए इसके लिए सीधे-सीधे वे मापदंड नहीं चलेंगें, जो भारत में लिखे जा रहे हिंदी साहित्य पर लागू होते हैं, लेकिन यह हिंदी साहित्य है और हिंदी की मुख्यधारा का हिस्सा है।"[29]

कथाकार, आलोचक मृदुला गर्ग, 'प्रवासी साहित्य' को हिंदी की मुख्यधारा में शामिल करने का पक्ष लेते हुए लिखती हैं- "प्रवासी साहित्य को अलग करके देखने की बजाय उसे हिंदी की मुख्यधारा में स्थान दिया जाए। विदेशों में रहने वाले लेखक जब संस्कृति के टकराव के बारे में लिखते हैं, तो लोगों को उच्च श्रेणी के साहित्य से मुख़ातिब होने का अवसर मिलता है। गाँव से शहर में आकर बसने वाले लोगों में भी प्रवास का दर्द देखा जा सकता है। यही वजह है कि प्रवासी साहित्य स्थापित मूल्यों के विरुद्ध मुहिम चलाने का काम कर रहा है।"[30]

प्रवासी साहित्य अपने मूल देश से पृथक किसी दूसरे देश में बसे हुए लोगों द्वारा रचा गया वह संसार है, जो अतीत के मोह में लिपटा हुआ और यथार्थ को पकड़ने के लिए प्रयासरत है। हिंदी के प्रवासी साहित्य का अपना वैशिष्टय है, जो उसकी संवेदना, जीवन दृष्टि, सरोकार तथा परिवेश में परिलक्षित होता

---

[28] ढींगरा, सुधा ओम, दो शब्द (भूमिका), खान, डॉ.एम. फ़िरोज़, (संपा), प्रवासी महिला कथाकार, पृ. सं. 07

[29] प्रसाद, इला, दूर देश के लेखक (आलेख), जनसत्ता (समाचार पत्र), पृ. 08

[30] उद्धरित, रानी, रक्षा, प्रवासी कथाकारों का लेखकीय संघर्ष : एक विमर्श (शोध आलेख), उपाध्याय, डॉ. वसुंधरा (संपा), हिंदी साहित्य और प्रवासी विमर्श, पृ. सं. 104

है। परिवेश बदल जाने से प्रवासी के जीवन में विषमताएँ और जटिलताएँ आती हैं। दो संस्कृतियों में सामंजस्य स्थापित करने में नए संस्कार नयी सोच, नया दृष्टिकोण और नयी-नयी मान्यताएँ बनने लगती हैं और इसी की अभिव्यक्ति प्रवासी साहित्य में होती है। विदेशी पृष्ठभूमि ने हिंदी रचनाक्षेत्र को विस्तृत फलक दिया है। प्रवासी हिंदी रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में विदेशी जीवन का चित्रण कर न सिर्फ़ साहित्य के माध्यम से हिंदी और उसके साहित्य को वैश्विक आधार प्रदान किया है बल्कि भारत में भी हिंदी साहित्य को दिशा प्रदान करने में अहम् भूमिका निभाई है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं प्रवास शब्द मनुष्य की गतिशीलता का बोधक है। मानव-सभ्यता के इतिहास से ही प्रवासन की क्रिया को देखा जाता रहा है। ऐतिहासिक काल में व्यक्ति ने धर्म और संस्कृति के प्रचार-प्रसार तथा स्थानांतरणीय कृषि करने के लिए अपनी यात्रा शुरू की थी और आधुनिक काल में अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में औद्योगिकीकरण की लहर के कारण पूरे विश्व में नगरीय प्रवास की प्रक्रिया तेजी से बढ़ी। मनुष्य जब सुख-सुविधाओं से लेस जीवन जीने के लिए एक भौगोलिक सीमा से दूसरे भौगोलिक सीमा में स्थानांतरण करता है तो उसे प्रवासी कहते हैं। प्रवास के मुख्यतः दो कारक हैं प्रत्याकर्षक और आकर्षक कारक। जब व्यक्ति रोज़गार, मूलभूत आवश्यकताओं और प्राकृतिक आपदाओं के कारण विवश होकर प्रवास करता है तो उसे प्रत्याकर्षक कारक कहते हैं और जब व्यक्ति स्वेच्छा से बेहतर अवसरों की तलाश में सुख-सुविधाओं से भरा पूरा जीवन जीने के लिए विकसित देशों में प्रवास करता है तो उसे आकर्षक कारक कहते हैं। प्रवास को चार प्रकारों में विभाजित किया गया है स्वेच्छिक, बाध्यकारी, परंपरागत और अप्रत्याशित प्रवास। स्वेच्छा से किया गया प्रवास स्वेच्छिक प्रवास कहलाता है तो मूलभूत आवश्यकताओं तथा सुख-सुविधाओं के आभाव में किया गया प्रवास बाध्यकारी प्रवास कहलाता है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी लोगों द्वारा अपनाया गया प्रवास परंपरागत प्रवास कहलाता है और आकस्मिक तथा अनाहूत कारणों से किया गया प्रवास अप्रत्याशित प्रवास कहलाता है। प्रवासी भारतीयों का इतिहास औपनिवेशिक काल से प्रारम्भ होकर अब तक जारी है। प्रवासी भारतीयों की स्थिति

समयानुसार बदलती रही। औपनिवेशकालीन प्रवासित लोगों की स्थिति अत्यंत त्रासद थी। वे लोग विशेष प्रकार के एग्रीमेंट के तहत गिरमिटिया मज़दूर के रूप में मॉरीशस, फीजी, सूरीनाम, दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में बहला-फुसला कर ले जाए गए। स्वाधीनता के पश्चात् लोगों ने शिल्पियों, व्यवसायिओं, व्यापारियों तथा फैक्ट्री मज़दूरों के रूप में थाईलैंड, मलेशिया, सिंगापुर आदि देशों में प्रवास किया और भूमण्डलीकरण के दौरान लोगों ने बेहतर अवसरों की तलाश में उच्च पदों पर कार्य करने के लिए डॉक्टर, इंजीनियर, प्रोफेसर, प्रबंधन परामर्शदाता, वित्तीय विशेषज्ञ के रूप में अमेरिका, कनाडा, ब्रिटेन, ऑस्ट्रेलिया आदि देशों में प्रवास किया और लगातार कर रहे हैं। प्रवासी भारतीयों की तीन श्रेणियाँ हैं। पहली श्रेणी में अनिवासी भारतीय आते हैं जो भारत के बाहर रहते हैं तथा जिन्होंने वित्तीय वर्ष के दौरान लगभग 182 दिन भारत में बिताये हों या पिछले चार वर्षों में 365 दिन तक रहे हों और संबंधित वर्ष में 60 दिनों तक रहे हों। दूसरी श्रेणी में भारतीय मूल के व्यक्ति आते हैं जो भारतीय पासपोर्ट धारक हों या जिनके माता-पिता या पितामह भारत की नागरिकता रखते हों। तीसरी श्रेणी में भारतीय विदेशी नागरिक आते हैं जो 26 जनवरी, 1950 को या उसके बाद भारत की नागरिकता रखते हों या 15 अगस्त 1947 के बाद भारत का हिस्से बने किसी क्षेत्र से संबंधित हों और बाद में विदेश जाकर बस गये हों। प्रवासी व्यक्तियों को मूल स्थान छोड़कर अन्य स्थान पर बसने के दौरान कई तरह के संकटों का सामना करना पड़ता है जिनमें सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, अस्मिता सम्बन्धी संकट प्रमुख हैं। नयी ज़मीन और नए परिवेश में जाने के पश्चात् प्रवासित व्यक्ति स्वयं को अजनबी और अकेला महसूस करता है। प्रत्येक समाज की अपनी विलक्षणताएँ होती हैं, जिसे प्रवासी व्यक्ति विभिन्न स्तरों पर अनुभव करता है। उसके अपने समाज और अपनाए हुए देश के समाज की संरचनाएँ तथा उसमें व्याप्त अंतर उसके मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव ड़ालते हैं। प्रवास के दौरान प्रवासी अपने मूल समाज के साथ खड़ा होता है तो कभी स्वयं को प्रवासी समाज का अंग स्वीकार करता है। विदेशी धरा पर रहते हुए प्रवासी स्थानीय समाज की संस्कृति व अपने देश की संस्कृति का विविध पक्षों के आधार पर मूल्यांकन व तुलना करते रहते हैं। नयी जगह और नये लोगों के बीच प्रवासी व्यक्ति अपने अस्तित्व और अस्मिता सम्बन्धी प्रश्नों को लेकर भी चिंतित

रहते हुए परिस्थितियों से जूझते हुए जीवन निर्वाह करते हैं। प्रवासी साहित्य अपने मूल देश से पृथक किसी दूसरे देश में बसे हुए लोगों द्वारा रचा गया वह संसार है, जो अतीत के मोह में लिपटा हुआ और यथार्थ को पकड़ने के लिए प्रयासरत है। हिंदी के प्रवासी साहित्य का अपना वैशिष्टय है, जो उसकी संवेदना, जीवन दृष्टि, सरोकार तथा परिवेश में परिलक्षित होता है। परिवेश बदल जाने से प्रवासी के जीवन में विषमताएँ और जटिलताएँ आती हैं। दो संस्कृतियों में सामंजस्य स्थापित करने में नए संस्कार नयी सोच, नया दृष्टिकोण और नयी-नयी मान्यताएँ बनने लगती हैं और इसी की अभिव्यक्ति प्रवासी साहित्य में होती है। विदेशी पृष्ठभूमि ने हिंदी रचनाक्षेत्र को विस्तृत फलक दिया है। प्रवासी हिंदी रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में विदेशी जीवन का चित्रण कर न सिर्फ़ साहित्य के माध्यम से हिंदी और उसके साहित्य को वैश्विक आधार प्रदान किया है बल्कि भारत में भी हिंदी साहित्य को दिशा प्रदान करने में अहम् भूमिका निभाई है।

संदर्भ

1. ऐतरेय ब्राह्मण 3/33/5
2. पाण्डेय, प्रेम प्रकाश: आप्रवासी श्रमिक (पूर्वी उत्तर प्रदेश से दिल्ली की ओर), नार्थर्न बुक सेंटर, दिल्ली 1990, पृ. सं. 05
3. आप्टे, वामन, शिवराम: संस्कृत शब्द कोश, पृ. सं 590
4. वाचस्पत्यम् भाग- 06 चौखम्भा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, पृ. सं 4492
5. मानक हिंदी कोश, भाग- 03, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2006, पृ. सं. 636
6. बुल्के, फादर कामिल: अंग्रेजी-हिंदी कोश, एस. चंद एंड कंपनी, दिल्ली, 2004, पृ. सं. 241
7. स्नातक, डॉ. सुरेंद्र देव: लघुसिद्धांत कौमुदी, चौखम्भा ओरिएण्टल, दिल्ली, 2012
8. मानक हिंदी कोश, भाग- 03, हिंदी साहित्य सम्मेलन, 2006, पृ. सं 636
9. वाचस्पत्यम, भाग- 06 चौखम्भा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, पृ. सं 4492
10. पाण्डेय, प्रेम प्रकाश: आप्रवासी श्रमिक (पूर्वी उत्तर प्रदेश से दिल्ली की ओर), नार्थर्न बुक सेंटर, दिल्ली 1990, पृ. सं. 01
11. वही पृ. सं. 01
12. वही पृ. सं. 01
13. Diaspora - defination, meaning amd synonym https://www.vocabulary.com/dictionary/diaspora#:~:text=A%20diaspora%20is%20a%20large,places%20all%20over%20the%20world
14. जोशी, रामशरण (संपा): भारतीय डायस्पोरा : विविध आयाम, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण, 2014, पृ. सं. 15
15. पाण्डेय, प्रेम प्रकाश: आप्रवासी श्रमिक (पूर्वी उत्तर प्रदेश से दिल्ली की ओर), नार्थर्न बुक सेंटर, दिल्ली 1990, पृ. सं.

16.वही पृ. सं. 2-3

17.राय, विभूतिनारायण: प्रवासी विशेषांक, वर्तमान साहित्य (पत्रिका), जनवरी-फरवरी, 2006, पृ. सं 69

18.https://www.vocabulary.com/articles/chooseyourwords/emigrate-immigrate-migrate/#:~:text=Emigrate%20means%20to%20leave%20one's,the%20sentence's%20point%20of%20view.

19.जोशी, रामशरण (संपा): भारतीय डायस्पोरा : विविध आयाम, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण, 2014, पृ. सं. 16

20.वही पृ. सं. 17

21.वही पृ. सं. 25

22. शर्मा, जया: प्रवासी हिंदी लेखन में 'नॉस्टेल्जिया बनाम यथार्थ' (शोध आलेख), कमल, अरुण (सं.), आलोचना पत्रिका, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, अंक 47, अक्टूबर- दिसंबर, 2012, पृ. सं. 43

23.कौर, डॉ. अकाल अमृत: प्रवासी पंजाबी नावल दा इतिहास, चेतन प्रकाशन लुधियाना, 2013, पृ. सं. 43

24.नंदन, श्याम, हिंदी में लिखना एक तरह से भारत से जुड़ना है: सुषम बेदी (साक्षात्कार), पाण्डेय, प्रो. नन्द किशोर (प्रधान संपा), प्रवासी जगत (पत्रिका), आगरा, केंद्रीय हिंदी संस्थान, अक्टूबर- दिसम्बर 2018, पृ. सं. 165-166

25.यादव, राजेंद्र: कि आए कौन कहाँ से हम? (संपादकीय), यादव, राजेंद्र (सम्पादक), हँस (पत्रिका), नई दिल्ली, अक्षर प्रकाशन, मई, 2007, पृ. 09

26.गोयनका, कमल किशोर: हिंदी का प्रवासी साहित्य, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, 2017 पृ सं. 15-16

27.देसाई, डॉ. बापूराव, प्रवासी साहित्य का इतिहास : सिद्धांत एवं विवेचन, कानपुर : पराग प्रकाशन, 2020, पृ सं 216

28.ढींगरा, सुधा ओम, दो शब्द (भूमिका), खान, डॉ.एम. फ़िरोज़, (संपा), प्रवासी महिला कथाकार, वाराणसी, सारंग प्रकाशन, 2018, पृ. सं. 07

29.प्रसाद, इला, दूर देश के लेखक (आलेख), जनसत्ता (समाचार पत्र), दिल्ली, दिनांक, 12 जुलाई, 2012 पृ. सं 08

30.उद्धरित, रानी, रक्षा, प्रवासी कथाकारों का लेखकीय संघर्ष : एक विमर्श (शोध आलेख), उपाध्याय, डॉ. वसुंधरा (संपा), हिंदी साहित्य और प्रवासी विमर्श, दिल्ली, साहित्य संचय, 2019, पृ. सं. 104

द्वितीय अध्याय

उषा प्रियंवदा का व्यक्तित्व और रचना संसार

1.1 जन्म, बचपन और पारिवारिक परिवेश

भारत में नवजागरणकालीन चेतना स्त्री उत्थान का प्रथम बिंदु है। समाज में व्याप्त रूढ़ियों और जर्जर होते मूल्यों को तिलांजलि देकर समाज सुधार का कार्य इस दौर में शुरु हुआ। इस दौरान कई स्त्रियाँ स्वाधीनता आंदोलन से जुड़ीं। हिंदी नवजागरण के आरंभिक दौर के उपन्यासों के केंद्र में मुख्यतः या गौणतः स्त्री शिक्षा ही रही है। 'देवरानी जेठानी की कहानी', 'भाग्यवती', 'वामा शिक्षक' आदि उपन्यासों के केंद्र में शिक्षित स्त्रियाँ ही हैं जिन्होंने समाज में प्रचलित कुप्रथाओं और रूढ़ियों पर न केवल प्रश्न चिह्न लगाया बल्कि एक नए समाज को आकार देने की कोशिश की जिसमें स्त्रियों की उपस्थिति भी उतनी ही अनिवार्य है जितनी पुरुषों की।

आधुनिक शिक्षा तथा सामाजिक परिवर्तन के कारण स्त्रियों में चेतना आयी। सामाजिक और मानसिक ग़ुलामी को अस्वीकार कर स्त्रियाँ अपने अस्तित्व और अस्मिता सम्बन्धी प्रश्न से मुख़ातिब हुई। अपनी उपस्थिति समाज में दर्ज कराते हुए सामाजिक बराबरी और अर्थ स्वतंत्रता को महसूस किया। अपने लिए नए क्षितिज का निर्माण किया। स्वतंत्रता पूर्व साहित्य में केवल कुछ गिनी चुनी महिलाओं का ही नाम शुमार था वहीं स्वतन्त्रता के पश्चात् अनेक महिला साहित्यकार सामने आयीं जो किसी भी दृष्टि में पुरुष से कमतर नहीं दिखाई पड़तीं। स्वातंत्र्योत्तर परिवेश में साहित्य की हर विधा में पुरुष साहित्यकार के साथ महिला साहित्यकारों का योगदान भी विशेष महत्वपूर्ण रहा है।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा-साहित्य में कई महिला रचनाकारों का आगमन हुआ जिनमें कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, मन्नू भंडारी, ममता कालिया, शिवानी, शशिप्रभा शास्त्री, मृदुला गर्ग, मंजुल भगत, चित्रा मुद्गल, दीप्ति खंडेलवाल और मधु कांकरिया प्रमुख हैं। हिंदी कथा-साहित्य को समृद्ध बनाने में इन लेखिकाओं का विशिष्ट योगदान रहा है। इन लेखिकाओं ने स्वानुभव और परानुभव को पूरी रचनात्मकता के साथ अभिव्यक्त किया।

आधुनिक महिला कथाकारों की सुदीर्घ पंक्ति में उषा प्रियंवदा बहुचर्चित लेखिका हैं। अंग्रेजी और हिंदी की 'दोआब' लेखिका के रूप में चर्चित उषा प्रियंवदा का जन्म 24 दिसंबर 1930 को कानपुर के

शिक्षित और प्रतिष्ठित कायस्थ परिवार में हुआ। उनके पिता का नाम दामोदर सक्सेना है जो पेशे से वकील थे और माता का नाम प्रियंवदा है जो कुशल गृहिणी थी। दामोदर सक्सेना की पाँच संतानें थीं। उनके दो पुत्र थे और तीन पुत्रियाँ। बड़े पुत्र का नाम शिब्बन लाल था जो स्वाधीनता आंदोलन में सक्रिय थे और कई बार जेल भी गए। घर में उन्हें सभी लोग 'दादा' कहकर सम्बोधित करते थे। स्वतंत्रता आंदोलन में उनकी सक्रियता के कारण घर वालों को बहुत मुश्किलों का सामना करना पड़ा। आये दिन उनके घर की तलाशी ली जाती और कई बार उन लोगों को घर छोड़कर दूसरों के घर में आश्रय लेने के लिए मिन्नतें भी करनी पड़ीं। उनका पूरा परिवार शिब्बन लाल की देश-सेवा देखकर गर्व करता था। उनका छोटा पुत्र होरी लाल बहुत मधुर स्वभाव का था। बड़ी बेटी का नाम कमला था जो इलाहाबाद विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त कर स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय रहीं। मँझली बेटी का नाम कामिनी था जो उषा से उम्र में चार वर्ष बड़ी थीं जो आक्रामक स्वभाव की थीं। सबसे छोटी पुत्री उषा हैं जो बहुत हँसमुख और संयमित स्वभाव की हैं जिन्होंने बहुत छोटी उम्र में ही अर्थाभाव के कारण अपनी सहज इच्छाओं का दमन किया। इनके अलावा भी परिवार में कई सदस्य थे जिनमें उषा की बड़ी दादी गुलाब देवी, छोटी दादी रमादेवी, उनकी बुआ आदि। उनके परिवार में दूसरी पीढ़ी के लगभग सभी सदस्य शिक्षित थे। परिवार की स्त्रियों में उनकी बुआ पहली स्त्री थीं जिन्होंने स्नातक तक पढ़ाई की और आगे आने वाली सभी स्त्रियों के लिए शिक्षा का द्वार खोला। उनके परिवार का दृष्टिकोण स्त्री शिक्षा के प्रति उदार रहा। परिवार के सदस्यों की देखा-देखी उषा में भी बचपन से ही पढ़ने-लिखने का चाव पैदा हुआ। दुर्भाग्य से उषा के पिता की मृत्यु जब वे ढाई वर्ष की रहीं तभी हो गयी थी लेकिन माँ की ममता और बड़े भाई के प्रेम ने उन्हें पिता की कमी को महसूस नहीं होने दिया। उषा अपनी माँ के वात्सल्य जनित और ममतामयी स्वभाव के बारे में लिखती हैं- "माँ अपनी सबसे छोटी, पिता और परिवार से वंचित बिना किसी बालोचित इच्छा प्रकट करने वाली बेटी से बेहद प्यार करती थीं। माँ के हृदय में करुणा, वात्सल्य और उदारता का सागर हिलोरें लेता रहता था। अपमान तिरस्कार सारे दिन उपवास करने वाली सबसे छोटी बेटी के लिए उनकी आँखों

में हमेशा आँसू रहते थे।"[31] उषा अपने बचपन के बारे में बताती हैं- "मेरा जीवन औरों की तरह नहीं था। उसमें टिफिन के लिए इकन्नी नहीं थी, रंग-बिरंगी चूड़ियाँ, रिबन या गोटे लगी साड़ियाँ नहीं थीं। मेरे मन में आक्रोश नहीं था, विद्रोह नहीं था, अपनी परिस्थितियों के प्रति स्वीकृति थी जो आज भी है।"[32] यही वजह थी कि बचपन में ही उन्होंने अपनी इच्छाओं का गला घोंट लिया जो कुछ उन्हें मिला उन्होंने स्वीकार किया। सन 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन के समय उनके भाई शिब्बन लाल को गिरफ्तार कर लिया गया और घर पर छापामारी हुई। इस दौरान वे बेघर हो गए और छुपते-छिपाते अपने छोटे बाबा के घर कानपुर पहुँचे और वहीं रहने लगे। वहाँ उषा पर संयुक्त परिवार के गहरे पारिवारिक संस्कारों का प्रभाव पड़ा- "वह समय माँ के लिए बहुत त्रासद था, कष्टमय, पैतृक परिवार में पराश्रिता होकर रहना उन जैसी आत्माभिमानी स्त्री के लिए सहज नहीं था।"[33] 1943 से 1947 के बीच का समय उषा के जीवन का संधिकाल रहा जिससे उनके आगे के जीवन को दिशा मिली। इसी दौरान उनमें रचनात्मकता के बीज पनपे।

1.2 शिक्षा-दीक्षा और पुरस्कार

उषा प्रियंवदा ने 1949 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम.ए. तथा पीएच-डी की उपाधि प्राप्त की और कुछ समय तक वहीं अंग्रेजी विभाग में अध्यापन का कार्य किया। इलाहाबाद में वे अपनी बहन और जीजा के घर रहती थीं। उनकी बहन के पति फ़िराक़ के छोटे भाई थे। घर में हमेशा साहित्यिक माहौल बना रहता था। इलाहाबाद में रहने के दौरान वे कई साहित्यकारों से मिलीं। श्रीपत राय, सुमित्रानंदन पंत, हरिवंशराय बच्चन, फ़िराक़ गोरखपुरी रघुपति सहाय, शिवरानी देवी जैसे रचनाकारों के संपर्क में आयीं और इन्हीं रचनाकारों की प्रेरणा से वे लेखन कार्य में जुटीं- "शायद उस विशिष्ट जीवन ने ही मेरी जीवनधारा

---

[31] प्रियंवदा, उषा: विस्मृति के द्वार (संस्मरण), विभोम स्वर (पत्रिका) ढींगरा, सुधा ओम (प्रमुख सम्पादक), मध्यप्रदेश, अक्टूबर-दिसम्बर, 2021, पृ. सं. 15

[32] प्रियंवदा, उषा: विस्मृति के द्वार (संस्मरण), विभोम स्वर (पत्रिका), अंक अक्टूबर-दिसंबर, 2021, पृ. 15

[33] वही पृ. सं. 15

को गति दी। बच्चन जी का कविता पाठ, पंत जी के घर की शामें, फ़िराक़ साहब का अप्रत्याशित लाड, श्रीपत जी का लेखन के लिए प्रोत्साहन...शायद तब 'सरिता' में कहानी छपाने और अपना नाम देखने का चाव समाप्त हो गया था, और 'कल्पना', 'कहानी', 'कृति' में उषा प्रियंवदा ने जन्म लिया था। कितना बचकाना और असम्पूर्ण लगता था अपना लेखन, पर यदि परिवार और प्रसिद्ध लेखकों, कवियों का प्रोत्साहन न मिला होता तो शायद संकोच में कहानीकार दबा ही रह जाता या 'कहानी' तक की दूरी और नया क्षितिज अनछुआ ही रह जाता।"[34]

उषा जी उस दौरान नियमित रूप से कहानियाँ लिखा करती थीं जो 'कल्पना' और 'सारिका' पत्रिकाओं में छपती थी। वर्ष 1953 में उन्होंने 'सरिता' पत्रिका में 'लाल चुनर' शीर्षक कहानी उषा नाम से लिखी जिसके पारिश्रमिक के रूप में उन्हें २० रुपये मिले। यह संभवतः उनकी पहली रचना थी। उन्होंने अपनी माँ द्वारा भोगे गए कष्टों और दुःखों को देखा था जिसने उन्हें अंदर तक झकझोर कर रख दिया था। यही वजह थी कि उनकी आरम्भिक रचनाओं में स्त्री की हताशा और निराशा भरी मनोदशाओं का वर्णन रहता था। स्त्रियों द्वारा अपने लिए स्टैंड लेना उस दौर की रचनाओं में नहीं दिखता था। कुछ समय बाद उन्होंने अपनी माँ का नाम 'प्रियंवदा' उषा के साथ जोड़ा और वह बन गयीं 'उषा प्रियंवदा'। उषा प्रियंवदा नाम से उनकी पहली कहानी 'कल्पना' पत्रिका में 'पूर्ति' शीर्षक से छपी। उषा प्रियंवदा अपने बारे में लिखती हैं - "वैसे नाम तो उषा सक्सेना है पर मेरी प्रायः सभी रचनाएँ उषा के नाम से प्रकाशित हुई हैं। बचपन से ही पढ़ने की ओर विशेष रुचि थी। उस समय जो भी कुछ हाथ लगा, समझ में आया या नहीं पढ़ डाला। कुछ बड़े होने पर मेरी पाठ्य-सामग्री का चुनाव मेरे परिवार वालों ने किया। परिवार में सभी उच्च शिक्षित तथा साहित्यानुरागी है…शिक्षा के दौरान और रुचि के कारण भी मैंने विदेशी लेखकों को काफी पढ़ा है। मैं उन कथाकारों की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुई जिन्होंने वर्तमान जीवन के विभिन्न पक्षों और तात्कालिक सामाजिक समस्याओं पर लिखा, जैसे टॉलस्टॉय, गोर्की, जेन ऑस्टेन, गाल्सवर्दी, हार्डी, डी एच लॉरेंस, सोमरसेट मॉम, स्टाइन बेक, हेमिंगवे आदि। हिंदी कथा-साहित्य की यथार्थवादी

---

[34] प्रियंवदा, उषा: शून्य तथा अन्य रचनाएँ, राजकमल प्रकाशन, पृ. सं. 122

धारा से मैं काफी प्रभावित हुई और उसमें प्रेमचंद तथा यशपाल, अज्ञेय मेरे प्रिय लेखक हैं। मेरी विशेष अभिरुचि कथा-साहित्य की ओर है और शायद इसलिए मेरा रचनात्मक क्षेत्र उसी तक सीमित है।"[35]

हिंदी कथा-साहित्य में उषा प्रियंवदा की ख्याति का आधार उनकी 'वापसी' शीर्षक कहानी है जो उन्होंने १९६०-६१ के समय लिखी थी। इस कहानी में उन्होंने मध्यवर्गीय परिवार के माध्यम से यह दिखाया है कि हमारा समाज किस तरह अर्थ केंद्रित हो चुका है, अर्थोपार्जन के आधार पर किस प्रकार सत्ता का केंद्र बदल जाता है। परिवार के लोग इस प्रकार संवेदनहीन हो चुके हैं कि जिस पुरुष ने ताउम्र अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए दूर रहकर आजीवन काम किया जब वही पुरुष सेवानिवृत्त होकर घर लौटता है तो किस प्रकार अपने ही परिवार में खुद को 'मिसफिट' महसूस करता है।

कुछ समय बाद वे दिल्ली आयीं और वहाँ लेडी श्रीराम कॉलेज में प्राध्यापन का कार्य किया। इसी दौरान उन्होंने 'छुट्टी का दिन' शीर्षक कहानी लिखी। 'ज़िन्दगी और गुलाब के फूल', 'पूर्ति', और 'मोहबंध' यह सभी कहानियाँ मध्यम वर्ग की, पढ़ी-लिखी औरतों के इंटरपर्सनल संबंधों की कहानियाँ हैं। उषा प्रियंवदा ने 'ज़िन्दगी और गुलाब के फूल' संग्रह की कहानियों के बाद कथावस्तु की थीम को बदला। अनुभव और अनुभूतियों की सघनता होने के कारण और नव भावबोध की कहानियाँ लिखीं- 'कोई नहीं', 'झूठा दर्पण', 'एक कोई दूसरा', 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' उन दिनों की उपज है।

तदुपरांत वे पोस्ट डॉक्टोरल अध्ययन के लिए फुलब्राइट स्कॉलरशिप पर अमरीका गयीं और वहाँ के ब्लूमिंगटन इंडियाना विश्वविद्यालय में अमरीकी साहित्य पर अनुसंधान का कार्य किया। अंग्रेज़ी भाषा में ही शोध कार्य और प्राध्यापन का काम करने के बावजूद उनकी रुचि हिंदी भाषा और साहित्य में ही विशेष रही। वे प्रमुख रूप से हिंदी में ही लिखती हैं। अमरीका में रहने के बावजूद उन्होंने हिंदी को नहीं छोड़ा। उषा अपने हिंदी-प्रेम के बारे में कहती हैं- "इतनी दूर आकर अपने सन्दर्भ से कटकर भी मैं हिंदी लेखन और भारत से जुड़ी हुई हूँ क्योंकि हिंदी ही मेरी भाषा है और यदि कुछ 'वर्थव्हाइल' मुझसे लिखा

[35]मिलिंद, सत्यप्रकाश: हिंदी की महिला साहित्यकार, पृ. सं. 39

जाएगा तो हिंदी में ही।"[36] तत्पश्चात् वे विस्कॉन्सिन विश्वविद्यालय मैडिसन में दक्षिणेशियाई विभाग में हिंदी विभागाध्यक्ष के पद पर कार्यरत रहीं। इंडियन स्टडीज विभाग में संलग्न रहते हुए 1977 में उन्हें 'फुल प्रोफ़ेसर ऑफ़ इंडियन लिटरेचर' का पद मिला। वहीं रहकर उन्होंने विश्व साहित्य और भारतीय साहित्य का अध्ययन और अध्यापन का कार्य किया। 2002 में अवकाश प्राप्त कर वे अब अपना पूरा समय लेखन, अध्ययन और बाग़बानी में देती हैं। साहित्य की सेवा करने के उपलक्ष्य में उषा जी को 'पद्मभूषण डॉ. मोटूरि सत्यनारायण' सम्मान से सम्मानित किया गया।

1.3 वैवाहिक जीवन

अमरीका प्रवास के दौरान उषा प्रियंवदा ने दो विवाह किए हालाँकि इस दूसरे विवाह के बारे में अधिकांश लोगों को नहीं पता है। अपने संस्मरणात्मक लेख में उन्होंने अपने दूसरे पति के नाम का उल्लेख किया है, जो अभी हाल ही में विभोम स्वर पत्रिका के अप्रैल-जून २०२१ अंक में प्रकाशित हुआ है। शोधार्थी द्वारा ईमेल के जरिये पूछे जाने पर उन्होंने अपने दूसरे वैवाहिक जीवन के बारे में बताया। उन्होंने पहला विवाह किम नेल्सन से किया। वे स्वीडन से थे और पेशे से प्रोफेसर थे। इस विवाह के पश्चात् उनके जीवन में उतार-चढ़ाव आये और कुछ वर्ष पश्चात् वे किम नेल्सन से अलग हो गयीं। कई वर्ष पश्चात् उन्होंने 1981 में दूसरा विवाह किया। उनके दूसरे पति का नाम प्रशांत है जो 'विश्व प्रसिद्ध स्कॉलर थे, फ्रेंच साहित्य के और हार्वर्ड में प्रोफेसर थे'। प्रशांत के बारे में उन्होंने लिखा है- "प्रशांत, पति, एक दम तैयार, उनका नामकरण श्री वेंकटेश्वर के मंदिर के मुख्य पंडित ने किया था। पूजा के बाद जब पंडित जी ने पूछा तो वो कुछ हिचकिचाए- पर तुरंत ही पंडित जी ने उनके सर पर चाँदी का टोपा रखते हुए कहा- नाम प्रशांत, गोत्र शिवम्। नाम सटीक था, धीर, वीर, गंभीर, विद्वान व्यक्ति का। वही नाम चल गया। तो प्रशांत जो अपने जीवन में बढ़ई बनने कि तमन्ना रखते थे, पर बन गए प्रोफेसर, वह भी हार्वर्ड जैसी यूनिवर्सिटी

[36] प्रियंवदा, उषा: मेरी प्रिय कहानियाँ, भूमिका से, पृ. सं. 05

के।"[37] उषा जी प्रशांत के साथ बेहद खुश थीं। अपनी और प्रशांत की पहली मुलाक़ात के बारे में लिखा है- "मुझसे उनका पहला परिचय एक कॉन्फ्रेंस में हुआ। जिस सत्र में मेरा आलेख था। उसके वह अध्यक्ष थे। कॉन्फ्रेंस इस्लामाबाद में थी। मुझे विस्कांसिन विश्वविद्यालय की प्रोफ़ेसर के रूप में निमंत्रण मिला था।"[38] उनके दाम्पत्य जीवन में जो भी उतार-चढ़ाव आये उन्होंने प्रशांत के साथ मिलकर उसे दूर किया। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं उषा जी का दाम्पत्य जीवन सफल रहा।

भले ही उषा प्रियंवदा ने अपने जीवन के साठ बसंत अमरीका में बितायें हों लेकिन उन्होंने अपनी जड़ों को विस्मित नहीं होने दिया। उनके अनुसार "बार-बार भारत लौटना मेरे लिए एक अनिवार्यता है। परिवार में साथ घिरकर बैठना सुख-दुःख बाँटना, पुराने मित्रों से लंबे-लंबे वार्तालाप, हर समय अपनी भाषा सुनने का सुख, यह सभी मुझे नयी प्रेरणा से भरता है।"[39]

2. उषा प्रियंवदा का रचना संसार

उषा प्रियंवदा युगीन चेतना से प्रभावित लेखिका हैं। उषा प्रियंवदा की गणना हिंदी के उन रचनाकारों में होती है, जिन्होंने आधुनिक जीवन की ऊब, छटपटाहट, संत्रास और अकेलेपन को अनुभूति के स्तर पर पहचाना तथा उनका अंकन करने में गहरे यथार्थबोध का परिचय दिया है। उनके कथा-साहित्य में मध्यवर्गीय परिवारों के बड़े ही अनुभूतिप्रवण चित्र देखने को मिलते हैं। मध्यवर्ग के पारिवारिक जीवन के यथार्थ एवं उसकी समस्याओं को लेखिका ने बड़ी सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया है। इनकी कहानियों में सामाजिक विषमता, टूटे हुए पारिवारिक सम्बन्ध, प्रेम के परिवर्तित स्वरुप, पति-पत्नी सम्बन्ध, बदलते स्त्री-पुरुष सम्बन्ध, प्रवासी स्त्री का आंतरिक और बाह्य द्वंद्व व स्त्री जीवन के विविध पक्षों का मार्मिक चित्रण मिलता है। एक स्त्री होने के नाते उन्होंने स्त्री जीवन के कई अनछुए पहलुओं को प्रकाश में लाने

---

[37] प्रियंवदा, उषा: विस्मृति के द्वार (संस्मरण), विभोम स्वर (पत्रिका), ढींगरा, सुधा ओम (प्रधान संपा.), अंक अप्रैल-जून, 2021पृ. सं. 07

[38] वही पृ. सं. 10

[39] प्रियंवदा, उषा: शून्य तथा अन्य रचनाएँ, राजकमल प्रकाशन, पृ. सं. 163

का कार्य किया है। उनका कथा-साहित्य स्त्री जीवन की त्रासद स्थितियों का ऐसा प्रामाणिक दस्तावेज है जो अपने समाज की नग्न तस्वीर को बिना तोड़े-मरोड़े यथार्थ रूप में पेश करता है। उनके कथा-साहित्य में एक बात जो विशेष रूप से उल्लेखनीय है, वह है स्त्री का व्यक्तित्वान्तरण। स्त्री किस प्रकार अपनी दारुण नियति से संघर्ष कर समाज में खुद को स्थापित करती है, क्रम से उनकी रचनाओं में दिखाई पड़ता है। उन्होंने स्त्री के भावनाशील मनोजगत और अंतर्द्वंद्व को बहुत बारीकी से पढ़कर कथा-साहित्य में रूपायित किया। उषा प्रियंवदा ने लिखा है- "मेरी चेतना और अनुभूति मध्यम वर्ग नारी जीवन में केंद्रित रही है और मेरी कहानियाँ उसी के चित्रण तक सीमित हैं। मैंने उसकी अनेक समस्याओं, उसकी मौन, व्यथा, विवशता, निराशा और फ्रस्ट्रेशन्स को वाणी देने का प्रयास किया है। मेरी कहानियों में नारी दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से उभरता है।"[40]

अमरीकी साहित्य पर शोध-कार्य कर वहीं बस जाने के कारण उषा प्रियंवदा का जीवनानुभव और सृजनात्मक आयाम विस्तृत और व्यापक हुआ। सातवें दशक के बीच में व आठवें दशक की शुरुआत में प्रकाशित उनके कहानी-संग्रह व उपन्यास में विदेश परिवेश का वर्णन है। परिवेश के बदलने के साथ ही भावभूमि और चिंतन में भी परिवर्तन होना लाज़मी है। उनके लेखन की भावभूमि में स्पष्ट तौर पर प्रवासी मनःस्थिति का वर्णन इस बात का प्रामाणिक दस्तावेज है। विदेश प्रवास के दौरान ही उन्होंने विविध देशों की यात्राएँ कीं और वहाँ रह रहे भारतीयों और विदेशी पात्रों की मनःस्थितियों का सूक्ष्म निरीक्षण करके अपनी कहानियों में अनुभूत सत्य की प्रामाणिक अभिव्यक्ति दी।

स्पष्ट है कि उषा प्रियंवदा का व्यक्तित्व दो भिन्न-भिन्न परिवेशों में रहकर विकसित हुआ है। यही कारण है कि उनका लेखन भी विविधता से भरपूर है। पृष्ठभूमि में विदेशीपन का आना तो स्वाभाविक है, किन्तु वैदेशिक भूमि पर भारतीयों की मानसिकता का सूक्ष्म वर्णन लेखिका ने इस कुशलता से किया है कि कहानी की कथ्यगत गहराई के साथ अनुभूत सत्य को व्यक्त करने के लिए शिल्पगत कलात्मक कुशलता का पैनापन भी बेहद प्रभावी रहा है।

---

[40] मिलिंद, सत्यप्रकाश: हिंदी की महिला साहित्यकार, रूपकमल प्रकाशन, पृ. सं. 39

अस्तित्ववादी चिंतन का प्रभाव भी उषा प्रियंवदा की रचनाओं में मिलता है। अधिकांश कहानियों में आधुनिक जीवन की ऊब, उदासी, संत्रास, एकाकीपन, अजनबीपन की भावना का यथार्थ चित्रण मिलता है। उनकी अधिकांश रचनाओं में स्त्री अपने स्वतंत्र अस्तित्व को लेकर छटपटाती हुई दिखाई देती है। अधिकांश पात्रों में अंतर्मुखी वृत्ति होने के कारण उनमें एकाकीपन, शून्यता, निराशा और अजनबीपन के भाव मिलते हैं। उनकी अपनी निजी वैयक्तिकता पात्रों में अनायास आ जाती है- "मेरे विचार में, विदेशी वातावरण ने इस अकेलेपन और अजनबीपन को मुखर किया है। वैसे मैं स्वयं एक 'प्राइवेट पर्सन' हूँ, और गहरे मित्र बनाने में मुझे समय लगता है, शायद मेरे पात्रों के अकेलेपन में, मेरी इस दृष्टि और प्रवृत्ति का प्रभाव आ जाता है।"[41]

उषा प्रियंवदा अपनी कहानियों के पात्र और कथानक अपने चिर-परिचित परिवेश से ही लेती हैं। रचनाओं के पात्रों को यथार्थ जीवन से लेकर उन्हें स्वाभाविक रूप में चित्रित करती हैं। उन्होंने अपने आस-पास के परिवेश की घटनाओं को कहानी में रूपायित किया है और इस पूरी प्रक्रिया में वे जाने-पहचाने पात्र कब अनजाने हो जाते हैं उन्हें भी पता नहीं चलता। उन्होंने अपनी सृजन प्रक्रिया के बारे में लिखा है- "मेरी कहानियों के पीछे एक बीज जरूर होता है, एक विचार, एक इमेज, एक अनुभव और अनुभूति का। मैं यह दावा नहीं करती कि मेरे सारे पात्र एकदम कल्पित हैं, साथ ही कोई भी, यथार्थ जीवन से पूरी तरह वैसे ही पृष्ठों में नहीं आ पाया है, क्योंकि किसी व्यक्ति विशेष को लेकर उसे पहचाने जाने वाले रूप में लाना मुझे कुछ ऊब भरा और ओछा-सा लगता है। यह जरूर है कि कभी-कभी कोई दृश्य, एक चेहरा या किसी का कहा गया वाक्य मेरी सृजनात्मक प्रक्रिया को ऐसे छू देता है कि एक कहानी अनायास अपने-आप गुथ जाती है। प्रायः चरित्रों का बीज जीवन से आता है, परन्तु कहानी शुरू करते समय मेरे मन में जो इमेज होती है, अंत करने तक एकदम बदल जाती है।"[42]

---

[41] प्रियंवदा, उषा: मेरी प्रिय कहानियाँ, भूमिका से, पृ. 10

[42] प्रियंवदा, उषा: मेरी प्रिय कहानियाँ, भूमिका से पृ. सं. 07

स्त्री जीवन की समस्याओं को वास्तविक एवं यथार्थ के रूप में प्रस्तुत करते हुए वह किसी आदर्श को प्रस्थापित नहीं करतीं बल्कि अपनी वैचारिकता और बौद्धिकता का ही परिचय देती हैं। उनकी कहानियों में भावुकता का वर्णन तो मिलता है लेकिन वह विचारपूर्ण और संयमित होता है। वैयक्तिक चेतना प्रधान होने के कारण इनकी रचनाओं में वैचारिकता और बौद्धिकता अधिक स्पष्ट होती है। वे अपने जीवन में विवेक को अधिक महत्व देती हैं- "किसी भी स्तर पर जीती हुई वे विवेक की तरफ़दार हैं, मानों लेखिका इस तथ्य के प्रति बराबर सचेत है कि विकासशील जीवन मूल्य मनुष्य की इच्छा क्षमता से अधिक उसकी चिंतन क्षमता पर निर्भर करते हैं।"[43]

उषा प्रियंवदा ने कहानी एवं उपन्यास विधा में अपनी धारदार कलम चलायी है। उन्होंने जिन कहानियों और उपन्यासों से हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि की है, वे इस प्रकार हैं-

कहानी संग्रह:

1. फिर बसंत आया (1961)
2. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल (1961)
3. एक कोई दूसरा (1966)
4. कितना बड़ा झूठ (1997)
5. शून्य तथा अन्य रचनाएँ (1997)
6. बनवास (2009)

उपन्यास:

1. पचपन खम्भे लाल दीवारें (1961)
2. रुकोगी नहीं राधिका (1966)
3. शेषयात्रा (1984)
4. अंतर्वंशी (2000)

---

[43] अवस्थी, देवी शंकर: विवेक के रंग, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, पृ. सं. 378

5. भया कबीर उदास (2007)

6. नदी (2013)

7. अल्पविराम (2019)

इसके अतिरिक्त उषा प्रियंवदा ने भारतीय साहित्य, लोककथाओं एवं मध्यकालीन भक्ति-काव्य पर लेख लिखे हैं जो अंग्रेजी भाषा में समय-समय पर प्रकाशित हुए। साथ ही कई हिंदी कहानियों का अंग्रेजी में अनुवाद भी किया।

2.1 कहानी संग्रह:

2.1.1 फिर बसंत आया

यह उषा प्रियंवदा का पहला कहानी संग्रह है जो 1961 में आया था। इसमें संकलित कहानियाँ उनकी आरम्भिक दौर की लिखी हुई हैं। इस संग्रह में कुल बारह कहानियाँ हैं। कहानियों का कथ्य क्रमशः इस प्रकार है- 'मेनकाः रम्भाः उर्वशी:' कहानी विवाह की समस्या पर आधारित है। विनोद की चाची स्वयं बहुत खूबसूरत हैं इसलिए वह अपनी जैसी ही खूबसूरत बहुएँ तीनों बेटे के लिए लाना चाहती हैं लेकिन ऐसा नहीं होता है। बड़ा बेटा विदेश चला जाता है और पैसों के लिए काली कुरूप लड़की से विवाह कर लेता है। मँझले बेटे के लिए भी सुंदर लड़की की तलाश की जाती है लेकिन यहाँ भी चाची के अरमानों पर पानी फिर जाता है, लड़की विवाह के बाद बहुत मोटी हो जाती है। फिर जोर शोर से तीसरे बेटे के लिए सुंदर लड़की खोजी जाती है लेकिन अंततः एक अनाथ असुंदर लड़की के प्रति सहानुभूति जगती है और तीसरे बेटे का विवाह भी असुंदर लड़की से हो जाता है। इस प्रकार चाची की इच्छा अधूरी रह जाती है और वे उन तीनों बहुओं को ही मेनका, रम्भा और उर्वशी मान लेती हैं। 'नष्ट नीड़' एक प्रेम कहानी है। यह कहानी समीर और रीना के प्रेम रूपी नीड़ के नष्ट होने की करुण दास्तान है। रीना के पिता अपनी प्रतिष्ठा

के मद में रीना का विवाह समीर से न करके किसी दूसरे व्यक्ति से करा देते हैं इस प्रकार रीना और समीर का प्रेम रूपी नीड़ टूट जाता है।

'पूर्ति' कहानी भी प्रेम कहानी है। लेखिका ने इस कहानी के जरिये यह स्पष्ट किया है कि प्रेम में उम्र मायने नहीं रखती। प्रेम में अगर कुछ जरुरी है तो वह है मनुष्य की भावनाएँ। इस कहानी में सौम्या नाम की लड़की है जिसके माता-पिता की मृत्यु के पश्चात उसके पिता के दोस्त उसकी देखभाल करते हैं और आगे चलकर सौम्या उन्हीं के प्रति आकर्षित होती है और अपनी भावनाओं को उनके सम्मुख प्रकट भी करती है।

'नयी कोंपल' कहानी में विवाह के कई वर्ष पश्चात् प्रेम रूपी कोंपल फूटने का मार्मिक वर्णन लेखिका ने किया है। इस कहानी में बिन्नी नाम की युवती की पीड़ा का वर्णन है जो ससुराल में पूरे परिवार से नफरत, तिरस्कार और अवहेलना झेलती है। पति भी उसे प्रेम नहीं करता लेकिन कुछ समय पश्चात बिन्नी का खत पढ़ कर उस पर दया आती है और उसके प्रति प्रेम की कोंपल भी फूट पड़ती है।

'तूफ़ान के बाद' कहानी भी प्रेम की भावभूमि पर आधारित है। इस कहानी में लेखिका ने अलका के जीवन में आये वियोग रूपी तूफ़ान और उसके बाद के भयंकर सन्नाटे का वर्णन किया है। अलका जो अपने भाई के दोस्त अविनाश बाबू से प्रेम करने लगती है लेकिन दूसरी जाति का होने के कारण और लोक-लाज के डर से अलका का भाई उसका विवाह अविनाश से न कराकर किसी और से करा देता है। हालांकि जिस लड़के से विवाह कराता है वह भी दूसरी जाति का होता है और बाद में अपने ग़लत निर्णय पर पछताते हुए भाई अलका से माफ़ी माँगता है।

'फिर बसंत आया' इस संग्रह की अंतिम कहानी है। इस कहानी में लेखिका ने असफल प्रेम से उत्पन्न एकाकीपन और वैयक्तिकता का बोध नौकरीपरस्त लड़की द्वारा व्यक्त किया है। छाया और विवेक का प्रेम असफल होता है और दोनों अलग हो जाते हैं। इस दौरान विनायक का विवाह हो जाता है और कुछ वर्ष पश्चात् विनायक और उसकी पत्नी को पुत्र-प्राप्ति होती है लेकिन कुछ ही दिनों बाद विनायक की

पत्नी की मृत्यु हो जाती है। आठ वर्ष पश्चात विनायक और छाया पुनः मिलते हैं और उनके जीवन में फिर से बसंत का प्रवेश होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपरोक्त सभी कहानियों में उषा प्रियंवदा ने भारतीय समाज में स्त्री-पुरुष संबंधों, वैवाहिक जीवन के विविध पक्षों का यथार्थ चित्रण किया है।

2.1.2 ज़िन्दगी और गुलाब के फूल

'ज़िन्दगी और गुलाब के फूल' कहानी संग्रह 1961 में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में भी बारह कहानियाँ संग्रहीत हैं। कहानियों का कथ्य इस प्रकार है- 'पैराम्बुलेटर' कहानी की नायिका अपने होने वाले शिशु के लिए पैराम्बुलेटर खरीदती है लेकिन उसे एक मरा हुआ बच्चा पैदा होता है। पैराम्बुलेटर से उसकी खुशियाँ और सपने जुड़े होते हैं। वह गाड़ी उसे बहुत प्रिय लगती है। आर्थिक समस्या के कारण कालिंदी का पति वह गाड़ी बेचना चाहता है लेकिन कालिंदी हठ करके मना कर देती है। आठ वर्ष बाद उनका पुत्र जन्म लेता है और बहुत बीमार हो जाता है तब आर्थिक तंगी और बच्चे की बीमारी के कारण उसे वह गाड़ी बेचनी पड़ जाती है। इस कहानी में उषा प्रियंवदा ने एक परिवार की आर्थिक समस्या और असहायता का वर्णन किया है।

'पूर्ति', 'मोहबंध' और 'चाँद चलता रहा' कहानियों में पढ़ी-लिखी स्त्रियों का अकेलापन, रिक्तता और मानसिक तनाव का चित्रण है। 'पूर्ति' कहानी में उषा प्रियंवदा एक ऐसी स्त्री का चित्रण करती हैं जो कॉलेज में पढ़ाती है और परिवार से दूर रहती है। छुट्टियों के दिनों में तारा एक विवाहित पुरुष नलिन से मिलती-जुलती है। नलिन के साथ रहकर तारा खुद को भरी-पूरी स्त्री महसूस करती है। यह जानते हुए भी कि नलिन विवाहित है तारा उसके प्रति आकर्षित होती है और उससे प्रेम करती है। नलिन द्वारा जिस सुख का वह अनुभव करती है उसी से उसके जीवन की शून्यता और रिक्तता की पूर्ति होती है।

'मोहबंध' में प्रेमी द्वारा वंचित अचला का अकेलापन चित्रित है। एक बार प्रेम में धोखा खाने के बाद अचला किसी पुरुष पर विश्वास नहीं करती, इसीलिए वह राजन का प्रेम-प्रस्ताव अस्वीकार कर देती है और अकेले जीवन व्यतीत करती है।

'छुट्टी का दिन' कहानी की रचना उषा प्रियंवदा ने लेडी श्रीराम कॉलेज में पढ़ाने के दौरान की थी। इस कहानी में उन्होंने एक स्त्री के अकेलेपन को दिखाया है। माया जो अपने घर परिवार से दूर नौकरी करने के लिए जाती है, अकेले ही रहती है। छुट्टी का दिन उसे परेशान करता है। उसे समझ नहीं आता कि वह पहाड़ जैसा दिन कैसे काटेगी? माया को ऐसा प्रतीत होता है जैसे उसका पूरा जीवन ऐसे ही अकेले बीतेगा और उसके जीवन का खालीपन उसे और रिक्त करता जाएगा। 'कच्चे धागे' कहानी भी मध्यवर्गीय परिवार की कहानी है जिसमें एक कम पढ़ी-लिखी लड़की अपने पड़ोसी के लड़के के प्रति आकर्षित होती है और मन ही मन उसके साथ जीवन जीने के सपने सँजोने लगती है लेकिन लड़के की बड़ी बहन अर्थाभाव के कारण दोनों का रिश्ता नामंजूर कर देती है और कुंतल के सँजोये गए सपने कच्चे धागे की तरह एक ही बार में टूटकर बिखर जाते हैं।

'वापसी' उषा प्रियंवदा की सबसे चर्चित कहानी है। हिंदी कथा साहित्य में उषा प्रियंवदा की ख्याति का आधार 'वापसी' शीर्षक कहानी है जिसका प्रकाशन वर्ष 1961 है। 'वापसी' और 'ज़िन्दगी और गुलाब के फूल' कहानियों में लेखिका ने अर्थ के आधार पर बदलते पारिवारिक सम्बन्धों का चित्रण किया है। 'वापसी' कहानी में उन्होंने मध्यवर्गीय परिवार के माध्यम से यह दिखाया है कि हमारा समाज किस तरह अर्थ केंद्रित हो चुका है। अर्थोपार्जन के आधार पर किस प्रकार सत्ता का केंद्र बदल जाता है। परिवार के लोग संवेदनहीन हो जाते हैं। जिस पुरुष ने ताउम्र अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए दूर रहकर आजीवन कार्य किया वही पुरुष जब सेवानिवृत्त होकर घर लौटता है तो किस प्रकार अपने ही परिवार में खुद को 'मिसफिट' महसूस करता है। नामवर सिंह 'वापसी' कहानी के सन्दर्भ में लिखते हैं- "गजाधर बाबू की वापसी पर किसी की आँखों में आँसू नहीं। एक विषाद की छाया है जो क्रमशः गहरी होती जाती है, केवल दया नहीं, केवल सहानुभूति नहीं, बल्कि जीवन के प्रति गहरा पीड़ा-बोध। इस

रिटायर आदमी का अकेलापन जैसे अपरिहार्य-अकेलापन से निकलना चाहते हुए भी वह फिर उसी अकेलेपन में वापस जाने के लिए लाचार हो जाता है। और क्या यह अकेलापन एक गजाधर बाबू का ही है? क्या ऐसा नहीं लगता कि यह अकेलापन बहुत व्यापक है, ऐसा अकेलापन जो कहीं न कहीं आज सबके अंदर मौजूद है।"[44]

'ज़िन्दगी और गुलाब के फूल' कहानी में लेखिका ने हमारे समाज की सच्चाई का वर्णन किया है। घर की सत्ता की बागडोर उसी के हाथ में होगी जिसके पास रोजगार होगा। घर में उसी का सम्मान होगा, बेरोजगार व्यक्ति को न तो परिवार स्वीकार करता है और न ही समाज। इस कहानी में भी सुबोध और वृंदा के माध्यम से यही दिखलाया गया है। सुबोध और वृंदा भाई-बहन हैं। सुबोध की नौकरी छूट जाती है और वृंदा ही अपनी नौकरी से घर का खर्चा चलाती है। जो सम्मान कभी सुबोध को मिलता था अब वह वृंदा के हिस्से आता है और सुबोध खुद को उपेक्षित महसूस करता है। सुबोध को बेरोजगार जानकर उसके ससुर सुबोध और शोभा की सगाई तोड़ देते हैं और सुबोध को धीरे-धीरे यह महसूस होता है कि उसके जीवन में फुलस्टॉप लग गया है।

2.1.3 एक कोई दूसरा

यह संग्रह 1966 में प्रकाशित हुआ। इस कहानी संग्रह में कुल सात कहानियाँ हैं। कहानियों का परिचय क्रमशः इस प्रकार है- 'एक कोई दूसरा', 'झूठा दर्पण', 'कोई नहीं', 'सागर पार का संगीत', 'पिघलती हुई बर्फ', 'चांदनी में बर्फ पर', और 'टूटे हुए'। इस संग्रह की कहानियों में भारतीय मन और विदेशी परिस्थितियों का द्वंद्व दिखाई पड़ता है। अमेरिका के उन्मुक्त वातावरण से प्रभावित होकर लेखिका ने ये कहानियाँ लिखीं।

'एक कोई दूसरा' कहानी में नीलांजला अपने रिसर्च कार्य के लिए विदेश जाती है और वहाँ जाकर विदेशी संस्कृति के अनुरूप स्वयं को ढालने की कोशिश करती है। विदेशी संस्कृति का प्रभाव

---

[44] सिंह, नामवर: कहानी नयी कहानी, लोकभारती प्रकाशन, पृ. सं. 137

नीलांजला पर इस कदर चढ़ता है कि वह अपनी सुध-बुध खो देती है। रोज़ाना क्लब जाना, दावतें करना, पिकनिक पर जाना, पुरुषों को अपनी और आकर्षित करना उसकी जीवन शैली का एक हिस्सा बन जाता है। लेकिन जब वह डॉ.कुमार से मिलती है तो उसे उस संस्कृति की नकारात्मकता समझ आने लगती है। उसे लगने लगता है अभी तक वह अपने जीवन को यूँ ही बर्बाद कर रही थी। डॉ.कुमार से मिलने के बाद उसे लगता है कि डॉ.कुमार ने उसे जीवन जीने की एक नयी दृष्टि दी है और वह धीरे-धीरे डॉ.कुमार के निकट आ जाती है। डॉ.कुमार भी उसे मन ही मन चाहते हैं। डॉ.कुमार अस्वस्थ होने के कारण अपनी भावनाओं को नीलांजला से छुपाते हैं। धीरे-धीरे नीलांजना अकेले रहने लगती है। डॉ.कुमार की पुस्तक 'एक कोई और' नीलांजला को समर्पित होती है। यह सोचकर वह खुद को सांत्वना देती है कि यह कोई और नीलांजला ही है।

'पिघलती हुई बर्फ' कहानी अपराध भावना से पीड़ित अक्षय की कहानी है। विदेश में वह सुधीरा के निकटतम संपर्क में आता है। उसकी देहगंध उसे आकर्षित करती है और वह बौखलाया-सा उसे पाने की हठ मन में बना लेता है, परन्तु जब वह देखता है कि वीरू भी सुधीरा के प्रति आकर्षित है तो उसे बुरा लगता है। यह जानते हुए भी कि उसकी गाड़ी का ब्रेक खराब है वह अपनी गाड़ी वीरू को चलाने के लिए दे देता है और वीरू की सड़क हादसे में मृत्यु हो जाती है। यह सुनकर सुधीरा के दिमाग पर गहरी चोट पहुँचती है और वह हमेशा के लिए अचेतन अवस्था में पहुँच जाती है। अक्षय खंड-खंड हो भारत लौटता है और भारत में पूर्व परिचित छवि से मिलना जुलना बढ़ाता है लेकिन उसका मन हमेशा अपराध-भावना से पीड़ित रहता है।

'चाँदनी में बर्फ पर' कहानी में लेखिका ने मनुष्य के भटकाव और पुनः पछतावे की मनोग्रंथि को दिखाया है। इस कहानी में हेम अपनी पूर्व प्रेमिका कल्याणी को छोड़कर विदेशी युवती मेरी मेलनिक से विवाह करता है। शादी के बाद मेरी अपना नाम बदल कर मीरा रख लेती है। दोनों विदेश चले जाते हैं और विदेश जाने के पश्चात मेरी हेम से दूर रहती और पीयरे से सम्बन्ध बना लेती है। इधर भारत में कल्याणी भी हेम के परिचित अविनाश से विवाह कर लेती है और उसके साथ खुश रहती है। मीरा का पर-पुरुष से

सम्बन्ध देख कर हेम अपने निर्णय पर पछतावा जाहिर करता है और कल्याणी को पुनः पाना चाहता है लेकिन कल्याणी उसे मना कर देती है।

'टूटे हुए' कहानी में त्रिवेणी पाठक उर्फ़ टीटी के निरंतर टूटने की पीड़ा और टीस का वर्णन लेखिका ने किया है। टीटी अपने प्रोफेसर पति के संसर्ग में रहकर एक असामान्य पुत्र को जन्म देती है और वह यह जानकर दुखी हो जाती है कि उसे अब संतान नहीं हो सकती। इस कारण वह अपने पति से भी दूर होने लगती है और अपने पति के शोधार्थी भास्कर के करीब आने लगती है और उसके साथ संबंध बनाती है। टीटी के लिए सुख-सुविधाएँ जुटाने में असमर्थ भास्कर बाहरी मन से प्रोफेसर की चरण वंदना करता था। टीटी और भास्कर जुड़कर भी टूटने के बोध से मुक्त नहीं हो पाते। इंद्रनाथ मदान ने उषा प्रियंवदा की कहानी-कला के बारे में सही ही लिखा है। उन्हीं के शब्दों में- "उषा प्रियंवदा की कहानी कला से रूढ़ियों, मृत परम्पराओं, जड़ मान्यताओं पर मीठी-मीठी चोटों की ध्वनि निकलती है, घिरे हुए जीवन की उबासी एवं उदासी उभरती है, आत्मीयता और करुणा के स्वर फूटते हैं सूक्ष्म व्यंग्य कहानीकार के बौद्धिक विकास और कलात्मक संयम का परिचय देता है, जो तटस्थ दृष्टि और गहन चिंतन का परिणाम है।"[45]

2.1.4 कितना बड़ा झूठ

इस संग्रह की अधिकांश कहानियाँ अमेरिकी तथा यूरोपीय परिवेश में लिखी गयी हैं। इस संग्रह में आठ कहानियाँ संग्रहीत है। ये कहानियाँ हैं –'संबंध', 'प्रतिध्वनियाँ', 'कितना बड़ा झूठ', 'ट्रिप', 'नींद', 'सुरंग', 'स्वीकृति' और 'मछलियाँ'। 'संबंध' इस संग्रह की पहली कहानी है। इस कहानी में श्यामला एक विवाहित पुरुष, जिसके तीन बच्चे होते हैं, सर्जन से प्रेम करती है। सर्जन भी श्यामला से प्रेम करता है और उसके लिए अपने घर-परिवार को छोड़ने के लिए तैयार हो जाता है, परन्तु श्यामला उसके साथ वैवाहिक बंधन में न बँधकर स्वच्छंद होकर उसके साथ रहने का निर्णय करती है। वह नहीं चाहती कि वे दोनों एक दूसरे पर किसी तरह का प्रतिबन्ध लगाएँ और न ही एक दूसरे से किसी तरह की उम्मीद रखें।

---

[45] मदान, इंद्रनाथ: आलोचना और साहित्य, राजकमल प्रकाशन, पृ. सं. 174

‘प्रतिध्वनियाँ’ कहानी में वसु विवाह को मीनिंगलेस रस्म मानती है। अपने पति को तलाक देकर वह कई पुरुषों के संसर्ग में रहती है लेकिन किसी के साथ विवाह के बंधन में बँधना उसे स्वीकार नहीं। अपने पति को तलाक देने के बाद वसु खुद को पूर्ण महसूस करती है। वसु कहती है- “कैसे कहे कि मुक्त होकर उसे पहली बार लगा था कि वह आकर्षक युवती है, उमंगें और कामनाएँ मरी नहीं हैं। अपने में निहित, स्वतंत्र, पूर्ण व्यक्तित्व को पाना कितनी बड़ी उपलब्धि थी!”[46]

‘ट्रिप’ कहानी भी दाम्पत्य जीवन की कहानी है। इस कहानी में पति और पत्नी के बीच कोई प्रतिबन्ध नहीं होता। यह जानते हुए भी कि उसकी पत्नी का दूसरे पुरुषों के साथ शारीरिक संबंध है, उसका पति कुछ नहीं कहता। अमरीका और यूरोपीय परिवेश में व्यक्ति एक दूसरे पर प्रतिबन्ध न लगाकार एक दूसरे के साथ जीना पसंद करते हैं।

‘नींद’ कहानी भी संबंधों के खुलेपन और स्वच्छंदता पर आधारित रचना है। ‘स्वीकृति’ कहानी भी इसी तरह के भावभूमि पर लिखी गयी है। इस कहानी में भी एक पति अपनी पत्नी के प्रेमी को स्वीकार करता है। उषा प्रियंवदा की अधिकांश कहानियाँ प्रेम की द्वन्द्वात्मकता के बीच उन्मुक्त यौन संबंध की और बढ़ती हुई आधुनिक भारतीय स्त्री की बदलती हुई छवि को सामने लाती हैं।

2.1.5 शून्य तथा अन्य रचनाएँ

इस संग्रह में उषा प्रियंवदा की चार कहानियाँ, तीन यात्रा संस्मरण और अमरीका से उनके द्वारा लिखे गए चौदह पत्रों को संकलित किया गया है। जिन कहानियों को इसमें संकलित किया गया है वे हैं- ‘पुनरावृत्ति’, ‘प्रसंग’, ‘शून्य’ और ‘आधा शहर’। ‘पुनरावृत्ति’ कहानी में लेखिका ने बहुत विचित्र-सी स्थिति का चित्रण किया है। इस कहानी में विवाहेतर संबंध के कारण एक स्त्री की पीड़ा और मनोव्यथा को दिखाया गया है। चिरंतन और संदीपनि पति-पत्नी हैं और उनकी छः संतान हैं। एक रोज़ संदीपनि को उनके पति चिरंतन को उनकी छात्रा के साथ अनैतिक संबंध रखने की बात का पता चलता है और वह

[46] प्रियंवदा, उषा: कितना बड़ा झूठ, राजकमल प्रकाशन, पृ. सं. 30

बहुत आहत होती है। इस घटना का उसके दिल और दिमाग पर बुरा प्रभाव पड़ता है और वह विक्षिप्त अवस्था में चली जाती है। चिरंतन अपनी छात्रा सैली से प्रेम करते हैं और उनके साथ शारीरिक संबंध बनाते हैं। सैली के चले जाने पर वे कई और औरतों के संपर्क में आते हैं। कुछ साल बाद जब चिरंतन विदेश जाते हैं तो उनकी मुलाकात पुनः सैली से होती है। सैली का विवाह हो जाता है लेकिन वह अपने पति से संतान प्राप्त नहीं कर सकती और जब तक वह अपनी इच्छा पूर्ती के लिए चिरंतन के पास आती है तब तक चिरंतन अपनी पत्नी संदीपनी के कारण नसबंदी करा चुके थे।

'प्रसंग' कहानी एक स्त्री के जीवन में आते नए मोड़ पर आधारित है। ममता नाम की स्त्री जो कि पेशे से डॉक्टर है और विदेश में रहती है। अपने परिवार के लिए वह विदेश छोड़कर भारत लौट आती है। भारत लौटने पर उसकी बुआ उसका विवाह एक अधेड़ उम्र के व्यक्ति से तय करती है। वह व्यक्ति दो बेटियों का पिता होता है। ममता बिना उस व्यक्ति को देखे विवाह के लिए तैयार हो जाती है और अपने जीवन में आये इस नए प्रसंग को स्वीकार कर लेती है।

'शून्य' कहानी एक प्रवासी रिसर्च स्कॉलर की पीड़ा भरी दास्तान पर आधारित है। विदेश में शोध कार्य करना बहुत कठिन होता है, पूरे शोध के दौरान नौकरी भी करनी पड़ती है और पढ़ाई भी। इस कहानी में इसी तरह की मनःस्थिति से जूझता हुआ एक लड़का दिखाई पड़ता है जो शोध कार्य के लिए विदेश गया है। विदेश में रहने के बावजूद उसे यह अफ़सोस रहा कि वह अपने पिता को एक पार्कर पेन तक न दे पाया। अपने पिता की मृत्यु पर जैसे-तैसे घर पहुँचा। घर से वापस विदेश लौटने पर जब वह अपने घर गया तो उसे पता चला कि उसका घर जल चुका है और अभी तक उसने शोध के लिए जो मेहनत की थी उस पर भी पानी फिर गया। दोबारा नए सिरे से शोधकार्य करने में खुद को खपाने की उसमें हिम्मत नहीं थी।

'आधा शहर' कहानी की नायिका इला के गंभीर और आत्मविश्वासी व्यक्तित्व को लेखिका ने बहुत सूक्ष्मता से चित्रित किया है। इला समाज का घिनौना चेहरा सामने लाती है जो स्त्री को मात्र वस्तु समझता है। इला को उसका आधा शहर अपनी प्रेमिका के रूप में व्याख्यायित करता है। इला का समाज में रहना दूभर हो जाता है। वह कहती भी है- ''एक पुरुष पचास स्त्रियों से प्रेम करता फिरता है, उसे तुम्हारा

समाज कुछ नहीं कहता? एक स्त्री अगर अकेली, सम्मान से जीना चाहती है उसके चारों तरफ गिद्ध नोच खाने को तैयार रहते हैं।"[47] अपने पति अभय की आत्महत्या के बाद इला अपने जीवन में पूरी तरह अकेली हो जाती है। इला को विदेश में नौकरी मिलती है और वह विदेश आ जाती है। यहाँ भी कुछ लोग उसका मज़ाक बनाते हैं। उसके साथ लोगों का नाम जोड़ते हैं। विदेश जाने के बाद वह राघव से मिलती है जो कि डीन है और उसकी नौकरी स्थायी कराने वाली समिति के सदस्य है। राघव इला की मदद करते हैं और उससे स्नेह भी करते हैं। इला भी उनका सम्मान व आदर करती है। कई लोग राघव के साथ भी उसका संबंध जोड़ते हैं। इला इन सबसे तंग आकर अपनी नौकरी से इस्तीफ़ा दे देती है और आजीवन एक लेखिका बनकर जीने का निर्णय करती है।

इन कहानियों के अलावा उषा प्रियंवदा ने तीन यात्रा संस्मरण लिखे हैं। पहला यात्रा संस्मरण 'पचपन खम्भें लाल दीवारें' के टेलीविजन पात्रों के साथ लंदन में हुई मुलाकात के बारे में है। दूसरे यात्रा संस्मरण में उन्होंने फ़िनलैंड में अपने पति और उनके परिवार वालों के साथ जिए हुए खूबसूरत पलों को शब्दों में पिरोया है। तीसरे यात्रा संस्मरण में उन्होंने टिवोली में नाचघर, आतिशबाजियों, मार्लिन डियेट्रिख एवं स्वीडन में सागर किनारे की यादों का वर्णन किया है।

इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने पाठकों के लिए कई पत्र भी लिखें।

2.2 उपन्यास

2.2.1 पचपन खम्भे लाल दीवारें

उषा प्रियंवदा का सबसे चर्चित उपन्यास 1961 में प्रकाशित 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' है। इस उपन्यास में एक भारतीय कामकाजी स्त्री के मन में चल रहे द्वंद्व, संघर्ष और अकेलेपन को लेखिका ने बहुत सूक्ष्मता से चित्रित किया है। कॉलेज के पचपन खम्भे और लाल दीवारों के बीच सुषमा का दम घुटने लगता है। अपने मित्रों के जीवन में ख़ुशी देखकर उसका अकेलापन उस पर हावी होने लगता है।

---

[47] प्रियंवदा, उषा: शून्य तथा अन्य रचनाएँ, राजकमल प्रकाशन, पृ. सं. 72

इसी बीच सुषमा के जीवन में नील का प्रवेश होता है और उसका जीवन भी कुछ समय के लिए ही सही खुशियों से भर जाता है। नील के साथ समय बिताना सुषमा को अच्छा लगता है। लेकिन एक वार्डन होने के नाते नील से प्रेम करने के लिए उसे अपमानित होना पड़ता है। कॉलेज में नील और सुषमा को लेकर कई तरह की अफवाहें उड़ाई जाती हैं और सुषमा से इस्तीफा तक माँग लिया जाता है। सुषमा परिवार की जिम्मेदारी से दबी होती है। वह जानती है कि अगर उसकी नौकरी नहीं रही तो उसके परिवार को भारी मुश्किलों का सामना करना पड़ सकता है। उसके चारों और दीवारें है- दायित्व की, पद की, गरिमा की और अपने परिवार की। इन जिम्मेदारियों को निभाने के लिए सुषमा नील से मिलना-जुलना बंद कर देती है, फिर से अकेले रहने का निणर्य करती है और अपने सुख की आहुति देती है।

सुषमा के बारे में उषा प्रियंवदा का कथन यहाँ उल्लेखनीय है- ''सुषमा ने परिवार के रूप में 'ग्रेटर गुड' को चुना और अपने व्यक्तिगत प्रेम को नकार दिया; यह नारी विमर्श का पहला चरण है। अपने निर्णय स्वयं लेना, अपनी राह निर्धारित करना, चाहे वह कितनी त्रासद क्यों न हो। एक बड़े सत्य या बड़ी लड़ाई के लिए अपने व्यक्तिगत सुख की आहुति दे देना।''[48]

2.2.2 रुकोगी नहीं राधिका

इस उपन्यास को हम 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' की अगली कड़ी के रूप में देख सकते है। 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' में जिस नारी की सामाजिक भूमिका को उसके पारिवारिक संदर्भ में भारतीय परिवेश में अपने संघटन सहित अंकित किया गया है, 'रुकोगी नहीं राधिका' में वह नारी अपनी वैयक्तिक भूमिका को पारिवारिक सन्दर्भों से अलग पौर्वात्य और पाश्चात्य परिवेश के बीच के द्वंद्व में अंकित करती है।

इस उपन्यास में लेखिका ने अकेलेपन और उलझनों से जूझती स्त्री का चित्रण किया है जो अपनी उलझनों से निजात पाना चाहती है और अपनी पहचान बनाना चाहती है। लेकिन वह नहीं निकल पाती।

[48] ढींगरा, सुधा ओम: वैश्विक रचनाकार : कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ, भाग-02, शिवना प्रकाशन पृ. सं. 22

यह जद्दोजहद कुछ उसके पिता के कारण थी। राधिका के पिता ने अपनी पहली पत्नी की मृत्यु के बाद दूसरी स्त्री से विवाह किया जो राधिका की हमउम्र थी। राधिका यह बात स्वीकार नहीं कर पाती और अपने एक विदेशी मित्र डैन के साथ अमेरिका चली जाती है। डैन और राधिका एक वर्ष तक साथ रहते हैं लेकिन फिर अलग हो जाते हैं, डैन से अलग होने बाद वह एकाकी जीवन की पीड़ा को समझती है और अपने पिता के साथ खुद के द्वारा किये क्रूर व्यवहार पर लज्जित महसूस करती है।

लेखिका ने इस उपन्यास में राधिका के हवाले से एक प्रवासी के मनःस्थिति का वर्णन किया है। एक प्रवासी के मन में चल रहे द्वंद्व को सूक्ष्मता से चित्रित किया है। प्रवासी व्यक्ति को न विदेश में चैन मिलता है और न ही विदेश से लौटने पर अपने देश में सुकून। राधिका की स्थिति भी ऐसी ही है। राधिका जब स्वदेश से विदेश पहुँचती है तो उसे 'कल्चरल शॉक' लगता है और पुनः विदेश से स्वदेश लौटने पर 'रिवर्स कल्चरल शॉक' लगता है क्योंकि दोनों ही देशों का परिवेश पूर्णतया विपरीत है। राधिका दो संस्कृतियों के पाटों में पिसकर अनिर्णय और अकेलापन झेलती है। वह दोनों संस्कृतियों देशी और विदेशी में मिसफिट होकर रह जाती है।

अमरीका की जीवन-शैली और भारत की जीवन-शैली एकदम अलग है। राधिका भी विदेश से लौटकर कुछ इस प्रकार महसूस करती है। जब वह अमरीका से लौटती है तब एयरपोर्ट पर अपने भाई और पिता को न पाकर दुःखी और अकेला महसूस करती है। विमाता विद्या के कहने पर अक्षय राधिका को लेने एयरपोर्ट जाता है। राधिका एक बार फिर अपने पिता और विमाता के साथ अपना संबंध ठीक करना चाहती है लेकिन परिस्थितियों के दबाव में उसका उत्साह चुक जाता है और वह यत्न करने पर भी अपने पुराने संबंधों को निबाह नहीं पाती और वापस अक्षय के पास दिल्ली चली जाती है। वह अक्षय में अपने पिता के गुणों को देखती है और उसके करीब आ जाती है लेकिन धीरे-धीरे वह उससे भी दूरी बना लेती है। मनीष भी राधिका के प्रति आकर्षित होता है लेकिन वह उसे भी नहीं स्वीकार पाती। वह अपने पिता के साथ रहने से भी मना कर देती है और अकेले रहने का निर्णय करती है।

2.2.3 शेषयात्रा

उषा प्रियंवदा का यह उपन्यास 1984 में प्रकाशित हुआ। उषा प्रियंवदा ने अपनी कहानियों और उपन्यासों में स्त्री की पीड़ा और मनोव्यथा का चित्रण करते हुए उसे अबला से सबला बनते हुए दिखाया है। इसी क्रम में यह उपन्यास है। इस उपन्यास में एक परित्यक्ता स्त्री की कहानी है जो सामर्थ्यहीनता के केंचुल को उतारकर अपनी पहचान नए सिरे से गढ़ती है। उपन्यास की नायिका अनु का विवाह विदेश में रहने वाले संभ्रांत परिवार के लड़के प्रणव से तय होता है जो पेशे से डॉक्टर है। विवाह के पश्चात अनु प्रणव के साथ अमरीका चली जाती है और अपने पति के आश्वासन 'मैं तुम्हें रानी बनाकर रखूँगा।' से बहुत खुश होती है और आँख बंद करके उसकी अनुगामिनी बनकर अपना जीवन व्यतीत करने लगती है। लेकिन जब धीरे-धीरे प्रणव अनु को तंज कसने लगता है तब अनु अपने बारे में सोचती है- "जो जिम्मेदारी प्रणव ने पकड़ाई थी, जो भूमिका दी गयी थी, वही निभा रही थी। खाना बनाना, घर साफ़-सुथरा रखना, प्रणव की पोजीसन के अनुसार कपड़े पहनना, पार्टियों में चुपचाप मुस्कुराते रहना"[49] अनु को जब प्रणव की दूसरी स्त्रियों से संबंध रखने की सच्चाई पता चलती है तो वह पूरी तरह टूट जाती है। प्रणव चन्द्रिका के लिए अनु को तलाक देता है और यहाँ से शुरू होता है अनु का संघर्ष।

अनु की दोस्त दिव्या और उसका पति उसकी मदद करते हैं। प्रणव की यादों से निकलकर वह अपने बारे में सोचना शुरू करती है और १० वर्ष बाद वह अपना मूल्यांकन करती है "दस सालों के वियोग ने उसे निखारा है, तोड़ा नहीं। जिस पगली सी बौराई लड़की को वह छोड़कर चला गया था, वह यही है? प्रखर मौन स्थिर।"[50] बहुत संघर्ष के बाद जब वह डॉक्टर बनती है और अपने स्व को पा लेती है तो कहती है- "मैं हूँ अनु, अपने में तुष्ट, अपने स्वत्व-बोध में सुखी, अपने सुख-दुःख में अकेली, अपने में स्वाधीन।"[51] इस प्रकार अनु अपनी शेष-यात्रा अपने अनुसार पूरी करती है।

---

[49] प्रियंवदा, उषा: शेषयात्रा, राजकमल प्रकाशन पृ. सं 27

[50] वही पृ. सं. 115

[51] वही पृ. सं. 129

बाद में वह दिव्या के भाई दीपांकर से विवाह करती है जो उसे बहुत पहले से ही प्रेम करता है। अंत में जब प्रणव बीमार पड़ता है और उसकी मुलाकात अनु से होती है तो अनु को देखकर वह बहुत स्तंभित रह जाता है। उसे मन ही मन अपने किये पर पछतावा होता है और अनु के लिए खुशी भी।

2.2.4 अंतर्वंशी

'अंतर्वंशी उपन्यास में प्रवासी जीवन' लघु शोध प्रबंध का मुख्य भाग है, अत: इस उपन्यास की कथावस्तु का वर्णन अंतिम अध्याय में किया जायेगा।

2.2.5 भया कबीर उदास

उषा प्रियंवदा का यह उपन्यास उपरोक्त चार उपन्यासों से अलग है। इस उपन्यास की कथावस्तु अन्य उपन्यासों से अलग है या कहें कुछ विशिष्ट है। शरीर की पूर्णता-अपूर्णता का प्रश्न किसी न किसी स्तर पर मन से जुड़ा होता है। इस उपन्यास में यह प्रश्न आरम्भ से लेकर अंत तक बना रहता है। उपन्यास की नायिका लिली पांडेय उर्फ़ यमन अपनी पीएच-डी के लिए अमेरिका गयी थी। लिली पीएच-डी करने के साथ-साथ वहाँ कॉलेज में पढ़ाती भी थी। उपन्यास की नायिका लिली विदेशी भूमि पर वह सहज और संयमित जीवन जी रही होती है कि अचानक ही उसे पता चलता है कि उसे स्तन कैंसर है। अपनी बीमारी के बारे में जानकर लिली बहुत परेशान होती है और भीतर से टूट चुकी होती है। शारीरिक रूप से परेशान रहने के साथ-साथ वह अपने अधूरेपन को लेकर मानसिक रूप से भी परेशान रहती है।

उपन्यास के अंत में लिली बनारस के घाट पर पहुँचती है। घाट पहुँचने पर वह जीवन के रहस्य को समझती है। घाट पर उसे एक ओर जलती हुई चिताएँ दिखाई देती हैं। उस दृश्य को देखकर वह जीवन की क्षणभंगुरता समझ जाती है। वह सोचती है 'मृत्यु का बोध स्वीकार कर लिया जाए, तब तो कोई समस्या ही नहीं रहेगी। हर दिन एक नया दिन, एक तोहफा होगा।' तो दूसरी ओर वह एक नववधू को देखती है जो गंगापूजन करने घाट पर आती है। एक ही जगह मृत्यु और जीवन को देखकर उसका मृत्यु भय समाप्त हो

जाता है और एक नए सिरे से जीवन जीने की लालसा लिली के मन में जगती है। लिली वापस वनमाली के पास लौट जाती है और उससे विवाह कर लेती है। इसी बिंदु पर उपन्यास का सुखद अंत होता है।

2.2.6 नदी

यह उपन्यास 2013 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में लेखिका ने विदेशी परिवेश में स्त्री जीवन के आत्म संघर्ष का सूक्ष्म चित्रण किया है। इस उपन्यास का महासूत्र है- "बस बहने दो जीवन सरिता को कहीं न कहीं जल्दी या देरी से कोई न कोई हल तो निकलेगा ही।"[52] विदेश में रह रही आकाशगंगा का पुत्र कैंसर पीड़ित होता है और उसकी मृत्यु हो जाती है। आकाशगंगा का पति उसके पुत्र की मृत्यु का जिम्मेदार अपनी पत्नी को ही मानता है और बिना अपनी पत्नी को बताये अमेरिका का आवास स्थान बेचकर अपनी दोनों बेटियों के साथ भारत लौट आता है और यहाँ से शुरू होता है आकाशगंगा का संघर्षमय सफ़र।

आकाशगंगा विदेश में अकेली हो जाती है उसके पास न तो मकान है और न ही डॉलर। आकाशगंगा अर्जुन सिंह से मिलती है और उसके प्रेम को स्वीकार कर लेती है। अर्जुन सिंह के बाद वह डॉक्टर एरिक के संपर्क में आती है। एरिक की सहायता से वह भारत लौटकर सास-ससुर और बेटियों की आत्मीयता में घिरने लगती है कि एक अप्रत्याशित स्थिति उसे फिर से अमेरिका पहुँचा देती है। वह पुनः अमेरिका पहुँचने के बाद प्रवीण दम्पति के साथ रहकर जीवन का नया अध्याय शुरू करती है। एरिक के साहचर्य से जन्मा उसका पुत्र 'स्तव्य' उसके जीवन के एक निर्णायक मोड़ पर आ खड़ा होता है।

उपन्यास में भारतीय कुटुंब व्यवस्था और विदेशी उन्मुक्त सामाजिकता जैसे दोनों परिवेशों को भारतीय स्त्री की अस्मिता और जीवन संघर्ष के संदर्भ में चित्रित किया गया है। आकाशगंगा भारतीय पारम्परिक कुटुंब व्यवस्था से स्वयं को अलग कर अपने गर्भ में पल रहे एरिक के शिशु को बचाकर उसे जन्म देने के लिए अमेरिकी परिवेश में लौट जाती है, क्योंकि इस मोड़ पर उसका निर्दिष्ट जीवन विदेशी

---

[52] प्रियंवदा, उषा: नदी, राजकमल प्रकाशन, फ्लैप से

परिवेश में स्वाभाविक है। आकाशगंगा की जीवनधारा परिस्थितियों के प्रवाह में अप्रत्याशित दिशाओं में निरंतर बहती जाती है।

2.2.7 अल्पविराम

उनका अंतिम उपन्यास 'अल्पविराम' है जो 2019 में प्रकाशित हुआ। 'अल्पविराम' एक प्रेम कथा है। इस उपन्यास के फ्लैप पर लिखा है- "उषा प्रियंवदा का यह उपन्यास एक लम्बे दिवास्वप्न की तरह है जिसमें तिलिस्मी, चमत्कारी अनुभवों के साथ-साथ अनापेक्षित घटनाएँ भी पात्रों के जीवन से जुड़ी हुई हैं। एक ओर यह मृत्यु के कगार पर खड़े परिपक्व व्यक्ति की तर्क विरुद्ध, असंगत, अपने से उम्र में आधी युवती के प्यार में आकंठ डूब जाने की कहानी है पर साथ- साथ एक अविकसित, अप्रस्फुटित, अव्यवहारिक स्त्री के सजग, सतर्क और स्वयंसिद्ध होने की भी यात्रा है। यात्रा का बिम्ब उषा प्रियंवदा के हर उपन्यास में मौजूद है। चाहे वह कैंसर से उबरने की यात्रा हो या अपने से विलग हुई संतान के लौटने तक की। इस उपन्यास की कथा भी प्रमुख स्त्री पात्र की स्वयं चेतना, स्वयं सजग और स्वयं जीवन-निर्णय लेने तक की यात्रा है।"[53]

उपन्यास की मुख्य पात्र शिंजिनी है जो अपने परिवार की सभी बातों को बिना तर्क किये स्वीकार कर लेती है। शिंजिनी के पिता अठारह वर्ष की उम्र में उसका विवाह करा देते हैं। विवाह के कुछ दिन बाद ही अपने पति की मृत्यु की खबर सुनकर वह अत्यंत दुःखी हो जाती है। कुछ दिन बाद उसके पिता की मृत्यु हो जाती है। शिंजिनी अपने भाई और माँ के साथ अमेरिका चली जाती है। अमेरिका पहुँचकर वह खुद को स्वतंत्र, पंखों वाली, आत्मनिर्भर लड़की के रूप में देखती है।

भारत लौटने पर उसे अपने से उम्र में बड़े प्रोफ़ेसर से प्रेम होता है। शिंजिनी का प्रोफ़ेसर से विवाह होता है और वह उनके साथ खुश रहती है। प्रोफ़ेसर के साथ रहकर उसे जीने की एक नयी दृष्टि मिलती है। वह अपने बारे में सोचती है। अपनी अस्मिता और अस्तित्व संबंधी प्रश्नों पर विचार करती है। वह निरंतर

---

[53] प्रियंवदा, उषा: अल्पविराम, राजकमल प्रकाशन, फ्लैप से

अपना आकलन करती है, क्या सार्थकता केवल दूसरों के जीवन को आगे बढ़ाने में है! क्या उसकी अपनी कोई पहचान नहीं है? क्या वह केवल प्रोफ़ेसर साहब की पत्नी है? वह सोचती है सदियों से औरतों ने खुद को केवल लोकगीतों में ही अभिव्यक्त किया है: "विवाह-गर्भ यही अवसर होते थे, जिनमें गीतों द्वारा वह अपने को एक्सप्रेस कर सकती थीं। इसमें तीन केटेगरी समझ लो। एक वह- जिनमें स्त्री अपने अरमान व्यक्त करती थी दूसरी वह जिनमें वह अपनी परिस्थितियों पर कमेंट करती थी और तीसरी व्यंग्य, उलाहनें। यह एक साइकोलॉजिकल अभिव्यक्ति होती थी। इसी तरह स्त्रियाँ जीवन में संतुलन रख पाती थीं।"[54]

शिंजिनी हमें अंतर्वंशी की वाना से एक कदम आगे की स्त्री के रूप में दिखाई पड़ती है। एक समय में ही वह पति और सद्यः मृत पति दोनों के प्रति प्रेम में डूबी दिखती है- "एक हृदय में कितनी भावनाएँ, कितनों के प्रति प्यार, लगाव समाहित रह सकता है, प्यार मुझे पति से था-है-और इस समय? प्रवाल से कितना सामीप्य, कितना आकर्षण, कितना लगाव महसूस हो रहा है! सच है एक हृदय में कितनों के प्रति प्यार, कोमल भावनाएँ समाहित रह सकती हैं।"[55]

उषा प्रियंवदा के सभी उपन्यसों में क्रम से स्त्री चेतना के उत्तरोत्तर विकसित होते सोपान देखे जा सकते हैं। उषा प्रियंवदा के उपन्यासों के सन्दर्भ में डॉ.ललिता यादव का कथन उल्लेखनीय है- "बढ़ती उम्र में सुषमा ने परिस्थितिवश टल गए विवाह पर ही अपने जीवन पर पूर्ण विराम लगा दिया था। सुषमा के बाद की सभी नायिकाओं के जीवन में यह पूर्ण विराम ढीला पड़ता गया। राधिका, अनु, लिली, आकाशगंगा और शिंजिनी के जीवन में सिर्फ अल्पविराम हैं, अदृश्य मर्यादाओं में जकड़ वंचित करने वाले पूर्णविराम नहीं।"[56]

इन उपन्यासों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मानवीय संवेदनाओं को कहानियों और उपन्यासों के कैनवास पर उतारकर जो चित्रांकन उषा प्रियंवदा ने किया है वे अपने आप में जीवंत बन पड़े

---

[54] वही पृ. सं. 203

[55] वही पृ. सं. 297

[56] यादव, डॉ. ललिता: स्त्री चेतना के सोपान : सुषमा से शिंजनी तक, अपनी माटी (ई-पत्रिका), यादव, जितेंद्र (संपा), अंक 38, अक्टूबर-दिसंबर, 2021

हैं। उनकी कहानियों और उपन्यासों को पढ़ते हुए हम पाते हैं कि ये घटनाएँ और दृश्य हमारे समाज में चारों ओर दिखाई पड़ते हैं।

उषा प्रियंवदा ने प्रमुख रूप से स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को लेकर ही रचना की है। स्त्री-पुरुष संबंधों में प्रेम के विविध पक्षों में स्वच्छंद, आत्मनिर्भर स्त्री के प्रेम के परिवर्तित स्वरूप, उसके बदलते सम्बन्ध, अकेलापन, उदासी के साथ-साथ भारतीय मन और विदेशी परिस्थितियों का द्वंद्व, प्रवासी स्त्री का जीवन संघर्ष, स्त्री की अविकसित, अप्रस्फुटित, अव्यवहारिकता से सजग, चेतनशील बनने तक की यात्रा को उनके कथा-साहित्य में देखा जा सकता है।

विदेशी वातावरण और पात्रों के बीच भी इनकी कहानियों में भारतीयता की सुखद अनुभति मिलती है। विदेशी प्रभाव के कारण वे मित्राभास वाले स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की अनिवार्यता पर बल देती हैं लेकिन उसके लिए वैवाहिक बन्धन की प्रतिबद्धता को स्वीकार नहीं करतीं। इनकी कहानियों के साथ-साथ उपन्यासों में भी वैवाहिक जीवन अपेक्षित रूप से सफल नहीं हैं। लेखिका के माध्यम से शेषयात्रा की अनु अपनी बात स्पष्ट रूप से कह देती है 'इफ़ आइ एम नॉट एनफ गुड फ़ॉर यू, यू आर नॉट गुड एनफ फ़ॉर मी'। इन सम्बन्धों में तनाव, कटुता के साथ-साथ मिसफिट होने की प्रवृत्ति भी विशेष रूप से स्पष्ट हुई है। लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय जी के शब्दों में- "आधुनिक मध्यवर्गीय परिवारों की क्या स्थिति है, उनकी मान्यताएँ किस सीमा तक परिवर्तित हुई है और मूल्य-मर्यादा किन विषमताओं और विकृतियों के कारण खण्डित हो रही हैं और उस परिवेश में तथाकथित आधुनिक नारी अपनी उच्च शिक्षा एवं अस्तित्व-रक्षा की भावना से ओत-प्रोत किस प्रकार मिसफिट है। उषा प्रियंवदा में अपनी कई कहानियों में इसका बड़ा ही यथार्थ और सजीव चित्रण किया है।"[57]

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्रवासी मध्यमवर्गीय कामकाजी स्त्री का जीवन संघर्ष, उसकी अस्मिता और अस्तित्व से जुड़े प्रश्नों को उषा प्रियंवदा ने अपनी रचनाओं में उठाया है। उनका कथा साहित्य प्रवासी जीवन के मधुर-तिक्त अनुभवों की दास्तान है। उनकी रचनाएँ पाठकों को बहुत

[57] वार्ष्णेय, लक्ष्मीसागर: आधुनिक कहानी का परिपार्श्व, पृष्ठ 148

गहराई तक उद्वेलित करती हैं। प्रवासी रचनाकार होने के नाते वे दोनों संस्कृतियों और परिवेश की भुक्तभोगी रही हैं। अपने समसामयिक युगबोध को उसकी सही पृष्ठभूमि में रखकर उसे पूरी ईमानदारी के साथ अभिव्यक्त करने का सफल प्रयास लेखिका ने किया है। कथ्यगत विविधता, सहजता, सरलता इनकी रचनाओं की प्रमुख विशेषता है। विदेशी प्रभाव के कारण इनकी कहानियों और उपन्यासों में अंग्रेज़ी का प्रयोग प्रमुख रूप में मिलता है, किंतु यह स्वाभाविकता और पाठकीय विश्वसनीयता का भी तकाजा है। गहरी मानवीय संवेदना की मौलिक अभिव्यंजना पद्धति के कारण वे हिंदी की समर्थ लेखिका हैं।

संदर्भ

31.प्रियंवदा, उषा: विस्मृति के द्वार (संस्मरण), विभोम स्वर (पत्रिका) ढींगरा, सुधा ओम (प्रमुख सम्पादक), मध्यप्रदेश, अक्टूबर-दिसम्बर, 2021, पृ. सं 15

32. प्रियंवदा, उषा: विस्मृति के द्वार (संस्मरण), विभोम स्वर (पत्रिका), अंक अक्टूबर-दिसंबर, 2021, पृ. 15

33. वही पृ. सं. 15

34. प्रियंवदा, उषा: शून्य तथा अन्य रचनाएँ, राजकमल प्रकाशन, 1996, पृ सं. 122

35.मिलिंद, सत्यप्रकाश: हिंदी की महिला साहित्यकार, रूपकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1960, पृ. सं. 39

36.प्रियंवदा, उषा: मेरी प्रिय कहानियाँ, भूमिका से, पृ. सं. 05

37.प्रियंवदा, उषा: विस्मृति के द्वार (संस्मरण), विभोम स्वर (पत्रिका), ढींगरा, सुधा ओम (प्रधान संपा.), अंक अप्रैल-जून, 2021, पृ. सं. 07

38.वही पृ. सं. 10

39.प्रियंवदा, उषा: शून्य तथा अन्य रचनाएँ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1996, पृ. सं. 163

40.मिलिंद, सत्यप्रकाश: हिंदी की महिला साहित्यकार, रूपकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1960, पृ. सं. 39

41.प्रियंवदा, उषा: मेरी प्रिय कहानियाँ, भूमिका से, पृ. 10

42.प्रियंवदा, उषा: मेरी प्रिय कहानियाँ, भूमिका से पृ. सं. 07

43.अवस्थी, देवी शंकर: विवेक के रंग, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1965, पृ. सं. 378

44.सिंह, नामवर: कहानी नयी कहानी, लोकभारती प्रकाशन, 2016, पृ. सं. 137

45.मदान, इंद्रनाथ: आलोचना और साहित्य, राजकमल प्रकाशन, पृ. सं. 174

46.प्रियंवदा, उषा: कितना बड़ा झूठ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2008 पृ. सं. 30

47.प्रियंवदा, उषा: शून्य तथा अन्य रचनाएँ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1996, पृ. सं. 72

48.ढींगरा, सुधा ओम: वैश्विक रचनाकार : कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ, भाग-02, शिवना प्रकाशन, भोपाल, पृ. सं. 22

49.प्रियंवदा, उषा: शेषयात्रा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, बारहवाँ संस्करण, पृ. सं. 27

50.वही पृ. सं. 115

51.वही पृ. सं. 129

52.प्रियंवदा, उषा: नदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2017, फ्लैप से

53.प्रियंवदा, उषा: अल्पविराम, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2019, फ्लैप से

54.वही पृ. सं 203

55.वही पृ. सं. 297

56.यादव, डॉ. ललिता: स्त्री चेतना के सोपान : सुषमा से शिंजनी तक, अपनी माटी (ई-पत्रिका), यादव, जितेंद्र (संपा), अंक 38, अक्टूबर-दिसंबर, 2021

57.वार्ष्णेय, लक्ष्मीसागर: आधुनिक कहानी का परिपार्श्व, पृष्ठ 148

तृतीय अध्याय

प्रवासी कथा साहित्य और उषा प्रियंवदा

हिंदी में लेखन आज भारत तक सीमित न रहकर, वैश्विक परिवेश के रूप में उभर रहा है। हिंदी प्रवासी साहित्य लेखन का आरम्भ मॉरीशस, सूरीनाम, गुयाना, त्रिनिदाद, फीजी और दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में हुआ। आज हिंदी प्रवासी साहित्य अमेरिका, कनाडा, कुवैत, फ्रांस, डेनमार्क, सऊदी अरब, ब्रिटेन, आदि देशों में पूरे मनोयोग से लिखा जा रहा है।

हिंदी प्रवासी साहित्य मुख्यतः दो प्रमुख धाराओं में विभाजित है। गिरमिटिया मजदूरों के देश का साहित्य और विश्व के विकसित देश का साहित्य। प्रथम धारा के अंतर्गत वे भारतवंशी आते हैं जिनके पूर्वजों को स्वतंत्रता पूर्व बहला-फुसलाकर मॉरीशस, फीजी, सूरीनाम, त्रिनिदाद, दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में ले जाया गया था। दूसरी धारा के अंतर्गत वे प्रवासी आते हैं जिन्होंने स्वतंत्रता पश्चात् सुख-सुविधाओं से लेस जीवन जीने के लिए प्रवास को अपनाया। स्वतंत्रता पूर्व और स्वतंत्रता पश्चात् प्रवासित हुए लोगों की परिस्थितियाँ भिन्न थीं। स्वतंत्रता पूर्व जो लोग अन्य देशों में गए वे गिरमिटिया मज़दूर के रूप में गए और स्वतंत्रता पश्चात् लोगों ने स्वेच्छा से बेहतर जीवन जीने के लिए, उपलब्धियों को हासिल करने के लिए प्रवास किया। इस संदर्भ में विमलेश कांति वर्मा का कथन उल्लेखनीय है, वे लिखते हैं- "विदेश में बसे हुए भारतीयों को स्पष्टतः दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। पहले वर्ग में वे भारतीय हैं जो 19वीं सदी के पूर्वार्ध से 20वीं सदी के पूर्वार्ध तक मॉरीशस(1834), गुयाना(1838), त्रिनिदाद(1845), दक्षिण अफ्रीका(1845), फीजी(1873) और सूरीनाम(1879) आदि देशों में गिरमिट (एग्रीमेंट) के रूप में विदेशी एजेंटो द्वारा गन्ने के खेतों में काम कराने के लिए बहला-फुसलाकर सुखद भविष्य का सपना दिखाकर विदेश ले जाए गए थे। दूसरी कोटि में उन प्रवासी भारतीयों की गणना की जा सकती है जो 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध में सामान्यतः भारत के स्वाधीन होने के बाद विकसित देशों में तथा अमेरिका, कनाडा, इंग्लैंड, हालैंड, ऑस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड, रूस, पुर्तगाल, फ्रांस, तथा खाड़ी के देशों में

गए। वे वहाँ पहले अभियांत्रिकी, चिकित्सा, सूचना-प्रौद्योगिकी और तकनीक आदि विविध विषयों की शिक्षा के लिए या कुशल/अकुशल श्रमिक कार्य के लिए गए और वहीं बस गए।"[58]

मॉरीशस, फीजी, सूरीनाम, गुयाना, त्रिनिदाद और टोबैगो, दक्षिण अफ्रीका जैसे देशों को 'गिरमिटिया देश' कहा जाता है जो मूलतः ब्रिटेन के उपनिवेश थे। इन देशों में अंग्रेज़ों ने कृषि व अन्य आर्थिक गतिविधियों के संचालन हेतु सस्ते श्रमिकों को ले जाने के लिए 'एग्रीमेंट" व्यवस्था लागू की थी। 'गिरमिट' शब्द वस्तुतः 'एग्रीमेंट' शब्द का ही विकृत रूप है। 'गिरमिट' व 'गिरमिटिया' शब्द की उत्पत्ति पर विचार करते हुए डॉ विवेकान्द शर्मा लिखते हैं- "अंग्रेज़ इन्हें खेती तथा अन्य कार्य कराने के लिए 'कुली' के रूप में ले जाते थे। इसके लिए पाँच वर्षों का एग्रीमेंट कराया जाता था, जिसे उच्चारण की सुविधा के लिए प्रवासी भारतीयों ने 'गिरमिट' में रूपांतरित कर लिया। इस प्रकार बाहर ले जाए जाने वाले इन प्रवासी भारतीयों को 'गिरमिटिया' कहा जाने लगा।"[59]

'गिरमिटिया प्रथा' का आरम्भ ब्रिटेन की संसद द्वारा सन् 1833 में पारित दास प्रथा के उन्मूलन सम्बन्धी कानून से स्वीकार किया जाता है, जिसके प्रभावाधीन अश्वेत समुदाय के लोगों से बेगार लेना बंद कर दिया था। तत्पश्चात् ब्रिटेन के शासकों को सस्ते श्रमिकों की आवश्यकता महसूस हुई। परिणामतः 'इंडियन इंडेचर लेबर सिस्टम' नामक कानून अस्तित्व में आया, जिसके तहत भारतीय उपमहाद्वीप से श्रमिकों को पाँच वर्षों के अनुबंध के आधार पर समुद्री जहाजों के द्वारा गिरमिटिया देशों में भेजा गया। इस प्रकार श्रमिकों को गिरमिटिया देशों में भेजने का क्रम सन् 1834 से लेकर लगभग 1923 तक अनवरत जारी रहा।

गिरमिटिया देशों में 'शर्तबंदी प्रथा' के तहत जाने वाले प्रवासी भारतीय भाषिक संस्कार भारत से ही साथ लेकर गए थे। 'शर्तबंदी प्रथा' के तहत इन देशों में गए हुए लोगों ने अपनी मनःस्थिति, दुःख, पीड़ा, व्यथा को साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया। प्रवासी होने और अपनी मातृभूमि से दूर होने की पीड़ा

---

[58] मिरोठा, मुकेश कुमारः प्रवास और सूरीनाम का हिंदी साहित्य (आलेख), पाण्डेय, नन्द किशोर (प्रधान संपा.), प्रवासी जगत (पत्रिका), पृ. सं. 30

[59] डॉ. विवेकानंदः फीजी में रामायण परंपरा (आलेख), दीपक, देवेंद्र (संपा.), साक्षात्कार पत्रिका, पृ. सं. 296

इन्हें भीतर तक उद्वेलित करती रही, जिससे उनके भीतर एक तड़प और टीस का भाव जन्म लेता रहा। यही तड़प, पीड़ा और टीस ही आगे चलकर उनके साहित्य-लेखन की आधार भूमि बनी। अतः गिरमिटिया देशों में रचित साहित्य कालांतर में प्रवासी साहित्य के नाम से जाना गया।

1.1 मॉरीशस के प्रमुख हिंदी कथाकार और उनकी कृतियाँ

हिंदी प्रवासी साहित्य की नींव मॉरीशस में रखी गयी थी। मॉरीशस को 'लघु भारत' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। मॉरीशस और भारत में सभ्यता, संस्कृति, जीवन-मूल्यों, रहन-सहन, खान-पान जैसी विभिन्न समानताएँ वर्तमान काल में भी बनी हुई हैं। मॉरीशस में क्रियोल, फ्रेंच, अंग्रेजी व हिंदी आदि विभिन्न भाषाओं का प्रचलन देखने को मिलता है। वहाँ सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा हिंदी ही है। मॉरीशस के लोगों ने हिंदी भाषा को अपनाकर उसे साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का कार्य किया। मॉरीशस में रचित प्रवासी साहित्य व उसकी भाषिक स्थिति के संदर्भ में टिप्पणी करते हुए अभिमन्यु अनत लिखते हैं- "मॉरीशस में साहित्य को समृद्ध करने में हिंदी लेखकों ने बहुत बड़ी भूमिका निभाई है। साथ ही साथ उस साहित्य से भारत व अन्य देशों में मॉरीशस के स्वर को बुलंद किया है। फ्रेंच भाषा यहाँ सभी सुविधाओं के बाद भी वह स्थान नहीं बना पायी है जो चंद वर्षों में हिंदी भाषा ने बनाया है।…यहाँ का हिंदी साहित्य भारत में अपने लिए जो स्थान बना पाया है, वह डेढ़ सौ सालों से लिखा जा रहा मॉरीशस का फ्रेंच साहित्य फ्रांस में नहीं बना पाया। मॉरीशस के हिंदी लेखक मॉरीशस की डेढ़ सौ पत्र-पत्रिकाओं में लिखते रहे हैं। अन्य देशों तक भी उनकी रचनाएँ पहुँचती रही हैं।"[60]

मॉरीशस में हिंदी साहित्य लेखन की एक समृद्ध परंपरा रही है। वहाँ कहानी-लेखन का आरम्भ स्वतंत्रता प्राप्ति से माना जाता है। इस संदर्भ में मॉरीशस के प्रसिद्ध कथाकार रामदेव धुरंधर का कथन दृष्टव्य है, उन्होंने लिखा है- "यहाँ लोगों ने प्रेमचंद और दूसरे भारतीय कथा मनीषियों को 1940 के आस-पास

---

[60]कर्नावट, डॉ. जवाहर: आपसी टकराव व खेमेबाजी के कारण हिंदी में विश्व स्तरीय रचनाएँ नहीं -अभिमन्यु अनत (साक्षात्कार), शांडिल्य, नरेश (संपा.): अक्षरम संगोष्ठी (पत्रिका), पृ. सं. 21-22

पढ़ना शुरू कर दिया था। लोगों ने देखा-देखी कहानियाँ लिखने का प्रयत्न तो किया, लेकिन तब कोई खास कहानी साहित्य न बन पाया था। हमारा देश 1968 में स्वतंत्र हुआ था और सच में यहाँ से कहानी लेखन की एक विशेष नींव पड़नी शुरू हुई।"[61] मॉरीशस का प्रथम लेखक पंडित आत्माराम विश्वनाथ को स्वीकार किया जाता है। वे 'हिन्दुस्तनी' पत्र के प्रकाशन हेतु 1912 में मॉरीशस पहुँचे थे। मॉरीशस में रचित पहली कहानी को लेकर विद्वानों में मतभेद है। मॉरीशस में हिंदी की पहली कहानी के रूप में सूर्यप्रसाद मंगर भगत की कहानी 'विनाश', वली मुहम्मद की कहानी 'अनबोलती चिड़ियाँ', प्रो. वासुदेव विष्णुदयाल की कहानी 'लुइज', पं. तारकेश्वरनाथ चतुर्वेदी की कहानी 'इन्दो' तथा पं. जयप्रकाश शर्मा की कहानी 'तारा' का उल्लेख किया जाता है। मॉरीशस में उपन्यास-लेखन का आरम्भ कृष्णलाल बिहारी द्वारा रचित 'पहला कदम' (1960) नामक उपन्यास से माना जाता है। अभिमन्यु अनत के उपन्यास-लेखन में प्रवेश के साथ ही मॉरीशस के हिंदी साहित्य में एक नए युग का सूत्रपात हुआ। उन्होंने सर्वाधिक उपन्यास लिखकर मॉरीशस के हिंदी साहित्य में श्री वृद्धि की है। उनके उपन्यास इस प्रकार हैं- 'और नदी बहती रही'(1970), 'आंदोलन' (1971), 'एक बीघा प्यार' (1972), 'जम गया सूरज' (1973), 'तीसरे किनारे पर' (1977), 'कुहासे का दायरा' (1978), 'शेफाली' (1979), 'हड़ताल कब होगी' (1979) आदि। अभिमन्यु अनत ने इन उपन्यासों के जरिये मॉरीशस के सामयिक यथार्थ को लिपिबद्ध किया है। इतिहास की यातनाएँ और मुक्ति की छटपटाहट उनके उपन्यासों में दिखायी पड़ती हैं। पहला उपन्यास 'और नदी बहती रही' में लेखक ने अपने पारिवारिक जीवन के लघु अंश, गन्ने के खेतों में काम कर रहे मजदूरों की दयनीय स्थिति का चित्रण किया है। दूसरे उपन्यास 'आंदोलन' में लेखक ने मजदूरों की समस्या, बेकारी, महँगाई, पक्षपात, दंगा-फसाद, जाति-भेद, भाई-भतीजावाद आदि के विरुद्ध युवा पीढ़ी द्वारा किये जा रहे आंदोलनों का चित्रण किया है। उपन्यास में प्रेम की झलक भी देखने को मिलती है। अपने तीसरे उपन्यास 'एक बीघा प्यार' में लेखक ने मानवीय संबंधों को आधार बनाया है। इस उपन्यास के बारे में अनत लिखते हैं- "एक

[61] धुरंधर, रामदेव: हिंदी प्रवासी कथा साहित्य (आलेख), गवली, डॉ. कल्पना (संपा.) हिंदी प्रवासी कथा साहित्य (भाग -1), पृ. सं. 24

बीघा प्यार रिश्तों का उपन्यास है। रिश्ता मजदूर का जीवन के साथ और रिश्ता आदमी का आदमी के साथ। इन दोनों रिश्तों के लिए 'एक बीघा प्यार' में जहाँ मुझे खेतिहर जीवन की समस्याएँ सामने रखनी थीं, वहीं आदमी और आदमी के बीच टूटते हुए रिश्तों के बीच भी चंद बने रहने वाले रिश्तों की बात भी कहनी थी। मेरे देश की युवा पीढ़ी जिस समय खेतों से अपने को काटकर मात्र अफ़सरशाही का ख्याल देखने लगी थी और सुविधा तथा आसानी से कमाने के तरीकों के पीछे अंधाधुंध भागने लगी थी, उस समय जवानों का अपने कृषि प्रधान देश के साथ, उन तमाम कठिनाइयों के बावजूद भी जो रिश्ता होना चाहिए था; उसे मैंने इस उपन्यास में प्रस्तुत करना चाहा है। दूसरी ओर आयात की हुई डिब्बे की संस्कृति से प्रभावित युवा वर्ग जब व्यक्तिवाद की ओर लपककर प्यार को खुदगर्जी से आगे की कोई परिभाषा नहीं दे पा रहा था तो मुझे चंद यथार्थों के बल पर उस आदर्श की ओर संकेत करना पड़ा जहाँ उसके आ जाने से उसमें जो निर्मलता आ जाती है, उसे मैंने दो भाइयों के बीच खोजने की चेष्टा की है।"[62]

डॉ. कमल किशोर गोयनका ने अभिमन्यु अनत को 'मॉरीशस का प्रेमचंद' उपाधि दी। वे लिखते हैं- "वे ही एकमात्र ऐसे हिंदी लेखक थे, जिन्होंने प्रवासी भारतीय के रूप में सर्वाधिक साहित्य लिखा था तथा जो भारत और मॉरीशस की आत्मा को जोड़ने वाले साहित्य-सेतु थे। भारत के पाठकों का सम्बन्ध अभिमन्यु अनत के साहित्य से 'दो शरीर एक आत्मा' वाला हो गया था, क्योंकि इतिहास की यातनाएँ और मुक्ति की आकांक्षा एवं संघर्ष लगभग एक-सा ही था। प्रेमचंद और अभिमन्यु में यही समानता है कि दोनों ही धरती के लेखक हैं तथा अपने देश की जन-पीड़ा और जन-मुक्ति के लेखक हैं। इस कारण वे मॉरीशस के प्रेमचंद हैं।"[63] अभिमन्यु अनत ने उपन्यासों के अतिरिक्त कई कहानियाँ भी लिखीं। उनके चर्चित कहानी संग्रह हैं- 'ख़ामोशी के चीत्कार', 'वह बीच का आदमी', 'एक थाली समंदर', 'बवंडर बाहर-भीतर', 'अब कल आएगा यमराज', 'अभिमन्यु अनत की प्रारंभिक कहानियाँ'।

---

[62] गोयनका, डॉ. कमल किशोर, अभिमन्यु अनत की उपन्यास यात्रा (आलेख), प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय (संपा.), प्रवासी जगत (पत्रिका), पृ. सं 23

[63] उद्धरित सिन्हा, डॉ. दयाल प्यारी: अभिमन्यु अनत के उपन्यासों में प्रवासी-जीवन का यथार्थ (शोधालेख), रमा (संपा), प्रवासी हिंदी साहित्य विविध आयाम, पृ. सं. 65

पूजानंद नेमा भी मॉरीशस के चर्चित कथाकार हैं। उनका कहानी संग्रह 'नया सफ़र सहने का' और 'परी तालाब' मॉरीशसीय हिंदी साहित्य जगत में खासा चर्चित हुआ। इन कहानियों के माध्यम से नेमा जी ने लोक-जीवन की समस्याओं, आँचलिक प्रभाव तथा सामयिक बोध से अवगत कराया है। कथाकार ने 'नया सफ़र सहने का' संग्रह की कहानियों में चाय बगान में काम करने वाले मजदूरों पर किये गए शोषण व उत्पीड़न का मार्मिक चित्रण किया है।

मॉरीशस के प्रवासी हिंदी कथाकारों में एक बड़ा नाम रामदेव धुरंधर का है। मॉरीशस की पत्रिकाओं में उनकी 200 से अधिक कहानियाँ छप चुकी हैं। भारतीय पत्रिकाओं धर्मयुग, सारिका, गगनांचल, आजकल आदि में भी इनकी कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं। उन्होंने कई उपन्यासों की रचना की जिनमें 'छोटी मछली बड़ी मछली', 'चेहरों का आदमी', 'बनते बिगड़ते रिश्ते', 'पूछो इस माटी से' और 'पथरीला सोना भाग 1 से 6' शामिल है। 'विष-मंथन' उनका कहानी संग्रह है। इन्होंने लघुकथायें भी लिखीं। इनके लघुकथा संग्रह हैं- 'चेहरे मेरे तुम्हारे', 'एक धरती एक आकाश', 'आते जाते लोग' और 'यात्रा साथ-साथ'। मॉरीशस के प्रवासी साहित्यकारों ने साहित्य की प्रत्येक विधा को अपनाते हुए एक नवीन दिशा प्रदान की है। इस देश के प्रसिद्ध साहित्यकारों में अभिमन्यु अनत, जयनारायण राय, कृष्णलाल बिहारी, सोमदत्त भिखारी, ब्रजेन्द्र कुमार भगत 'मधुकर', मुनीश्वर लाल चिंतामणि, राज हीरामन, पूजानंद नेमा, रामदेव धुरंधर, ईश्वरदत्त अलिमन, विष्णुदत्त मधु, पं जयप्रकाश शर्मा, बृजमोहन, गोवर्धन ठाकुर, धर्मवीर घूरा आदि का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

1.2 फीजी के प्रमुख हिंदी कथाकार और उनकी कृतियाँ

फीजी में भारतवंशियों द्वारा लिखा गया हिंदी साहित्य उच्चतम कोटि का है। इस देश में बसे भारतवंशी भारत से ही साहित्यिक अनुराग व संस्कार लेकर गए थे। फीजी गए हुए प्रवासी अपने साथ रामचरितमानस लेकर गए थे। भारतीय संस्कृति से उनका लगाव आज भी उसी रूप में विद्यमान है। फीजी में बसे प्रवासी भारतीयों की समृद्ध परंपरा पर विचार करते हुए शरद कुमार लिखते हैं- "भगवान राम की

यह प्रजा अपने साथ मुल्ला दाऊद की 'चंदायन', जायसी की 'पद्मावत', और तुलसी की 'रामचरितमानस' की भाषाई संस्कृति अपने साथ लेकर जा रही थी। साहित्य के नाम पर इनके पास तुलसीकृत 'रामचरितमानस' थी जिसके भजन आज भी फीजी के खेतों, गाँवों और शहरों में रामायण मण्डलियों द्वारा बड़े ही श्रद्धाभाव से गाये जाते हैं।"[64]

फीजी में कथा साहित्य की अपेक्षा काव्य साहित्य का विकास पहले हुआ। फीजी में प्रवासियों की दुर्दशा से सर्वप्रथम तोताराम सनाढ्य ने परिचित कराया। उन्होंने फीजी में व्यतीत किये हुए अपने जीवनानुभव को 'फीजी द्वीप में मेरे 21 वर्ष' शीर्षक से 1914 में प्रकाशित करवाया। फीजी के विषय में यह पहला लेखकीय प्रयास था जिसे उन्होंने पं बनारसीदास चतुर्वेदी की प्रेरणा से संपन्न किया। फीजी साहित्यकारों में प्रो. सुब्रह्मणी तथा जोगिंदर सिंह कँवल सबसे प्रसिद्ध हुए। 'डउका पुराण' प्रो. सुब्रह्मणी का चर्चित उपन्यास है। उन्होंने फीजी की जन-पीड़ा को अपने लेखकीय कौशल से वाणी दी। 'बताओ ट्रैन कहाँ जाती है' कहानी में उन्होंने गिरमिटिया भारतवंशियों के साथ अंग्रेज़ों द्वारा किये गए शोषण, अत्याचार और अमानवीय व्यवहारों को चित्रित किया है।

फीजी के ही अन्य कथाकर जोगिंदर सिंह कँवल के साहित्यिक अवदान के लिए उन्हें 'फीजी के प्रेमचंद' की उपाधि से नवाज़ा गया। उन्होंने कई उपन्यासों की रचना की। 'सवेरा' (१९७६), 'धरती मेरी माता' (१९७८), 'करवट' (१९७९), 'सात समुद्र पार' (१९८३) उनके चर्चित उपन्यास हैं। 'सवेरा' उपन्यास में लेखक ने कुली-प्रथा की यंत्रणापूर्ण वास्तविकता से परिचित कराया। कँवल जी इस उपन्यास के बारे में लिखते हैं- "उन दिनों यह छोटा-सा टापू फीजी भी महारानी के ताज का एक हीरा बन चुका था। यहाँ खेतों और मिलों में हजारों दर्दनाक घटनाएँ घटीं। यह पुस्तक उन चंद घटनाओं पर आधारित है, जिन्हें मैं कुछ समय से इकट्ठा कर रहा था। इनकी घटनाओं की कड़ियों को लेकर सूत्र में जोड़ने का मैंने प्रयत्न किया है। इनमें बहुत-सी बातें सच्ची हैं, मैंने केवल उन्हें शब्दों के वस्त्र पहनाए हैं। यदि पाठकों को दो-चार

[64] कुमार, शरद, फीजी में हिंदी: नये आयाम (आलेख), सुखलाल, गंगाधर सिंह गुलशन (संपा.) विश्व हिंदी पत्रिका, 2010 (पत्रिका), पृ. सं. 27

स्थानों पर कोई प्रसंग बनावटी-सा लगे तो वे समझ लें कि वहाँ कहानी को जारी रखने के लिए कल्पना के धागों से गाँठे बाँधी गयी हैं।"[65]

उपन्यास की भाषा में फीजी की हिंदी जिसे 'फीजीयन' कहा जाता है, उसका भी प्रयोग हुआ है। एक दृष्टांत प्रस्तुत है- "हिआं फीजी में तो ईह बहुत मामूली-सी बात है, बेटा। जौन समय हम लोगन आए रहा तो हालत खराब रहा कि हमें तो मान-अपमान सब भूल गईस… ईह जौन कुछ आज भईस, उह तो हमार लिए कोई बड़ा बात नहीं।"[66]

1.3 ब्रिटेन के प्रमुख हिंदी कथाकार और उनकी कृतियाँ

ब्रिटेन, अमरीका, कनाडा, स्वीडेन आदि देशों के प्रवासी हिंदी कथा साहित्य में नॉस्टेल्जिया, सांस्कृतिक आघात, अकेलापन, मानसिक द्वन्द्व, मूल्यों की टकराहट, अस्तित्व और अस्मिता मूलक संघर्ष आदि दिखाई पड़ता है। यहाँ बसे प्रवासी रचनाकारों ने साहित्य-जगत् व पाठक-वर्ग को एक अलग समाज के रचना-संसार व सरोकारों से परिचित कराया। इन देशों में बसने वाले प्रवासी भारतीय मॉरीशस, फीजी, सूरीनाम आदि देशों में बसने वाले प्रवासियों से भिन्न थे। इनके समक्ष उस तरह की चुनौतियाँ और दारुण परिस्थितियाँ नहीं थीं जिसका सामना गिरमिटिया मजदूरों के वंशजों ने किया था। अप्रवासियों का साहित्य, इसमें अमरीका, इंग्लैंड, कनाडा आदि देशों के हिंदी लेखक हैं, जो स्वयं वहाँ जाकर बसे, उनके द्वारा लिखा गया साहित्य पहली धारा के प्रवासी लेखकों के साहित्य से भिन्न है। संघर्ष के मुद्दे और उनकी जीवन शैली भी भिन्न है। सुषम बेदी, विजय चौहान, उषा प्रियंवदा, उमेश अग्निहोत्री, विशाखा ठाकुर, शालीग्राम शुक्ल, रेणु राजवंशी, इंदिरा मित्तल, रेखा रस्तोगी आदि इनमें से अधिकांश स्वाधीनता के पश्चात् इन देशों में बसे है। जीवन और जगत् के प्रति इनका दृष्टिकोण अलग है। इन्होंने वह नारकीय जीवन नहीं देखा, जो भारतवंशियों ने देखा था। लेकिन एक विशेष बात जो इन साहित्यकारों में समान है, वह है,

---

[65] कँवल, जे. एस: सवेरा, स्टार पब्लिकेशन, पृ. सं. 07

[66] वही पृ. सं. 100

भारतीय होने का भाव। दोनों ही प्रकार के प्रवासी साहित्य में भारत विद्यमान है, चाहे वह धर्म-संस्कृति के स्रोत के रूप में हो नॉस्टैल्जिया के रूप में हो या अस्तित्व एवं अस्मिता बोध के रूप में। इस प्रकार विदेशों में रहने वाले अप्रवासी भारतीय वहाँ के परिवेश में रहते हुए अपने आस-पास के लोगों के जीवन का सूक्ष्म निरीक्षण कर साहित्य-सर्जन कर रहे हैं।

ब्रिटेन में प्रवासी हिंदी साहित्य के लेखन का आरम्भ प्रेमचंद के समकालीन रचनाकार डॉ. धनीराम प्रेम की कहानियों से माना जाता है । वे कहानीकार, गीतकार तथा आलोचक थे। धनीराम प्रेम ने कई कहानियाँ लिखीं, 'प्राणेशवरी', 'वीरांगना पन्ना', 'वल्लरी', 'देवी', 'जॉन', 'चलता पुर्जा', 'लाल जूता', 'हृदय की आँखें' आदि उनकी चर्चित कहानियाँ हैं जो समय-समय पर हंस, चाँद, मर्यादा पत्रिका में प्रकाशित हुईं। उनकी कुछ कहानियाँ 'बारहसैनी' पत्रिका में 1977 में प्रकाशित हुईं। 1960 के दशक में दामोदर प्रसाद सिंघल और उनकी पत्नी देवहुति के लेख और उपन्यास भारतीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। इसी बीच 1960 में ब्रिटेन आयीं पंजाबी की प्रसिद्ध लेखिका कैलाशपुरी का पंजाबी में लिखा उपन्यास 'सूजी' हिंदी में अनूदित होकर आया। यह मार्मिक उपन्यास पचास के दशक में पंजाब से लंदन गए कामगारों की संघर्षपूर्ण जीवन गाथा है। स्वतंत्रता के पश्चात् ब्रिटेन जाने वाले लोग सुशिक्षित व चेतना संपन्न थे। उन्होंने अपने प्रवासी जीवन के अनुभवों व कटु यथार्थ को साहित्य-लेखन के माध्यम से अभिव्यक्त किया। इस दौर में ब्रिटेन में हिंदी-साहित्य लेखन की शुरुआत कविता-लेखन से हुई, जिसमें रमा भार्गव का 1985 में प्रकाशित 'प्रवास की प्रतिछाया' नामक काव्य-संग्रह मील का पत्थर साबित हुआ। ब्रिटेन में हिंदी कथा साहित्य लेखन बहुत बाद में हुआ। ब्रिटेन में हिंदी साहित्य-लेखन के आरंभिक दौर के बारे में नीना पॉल लिखती हैं- "अपना घर छोड़ कर विदेश में आकर बसने का दुःख वही जानता है, जिसने इसे भुगता हो। 60 का दशक ऐसा समय था, जब बहुत से भारतीयों ने अपना बसेरा ब्रिटेन में बसाया। इसमें बहुत से शिक्षक थे और कुछ कहानियाँ और कविताएँ भी लिखते थे। देश छूटने की कसक वे अपने लेखन द्वारा निकालने लगे। कहानियाँ अधिकतर नॉस्टेल्जिया पर आधारित होतीं, जो उन्हीं लेखकों तक सीमित रह

जातीं। बरसों यहाँ रहते हुए और इतना सब लिखते हुए किसी का एक भी कहानी-संग्रह सामने नहीं आया था।"[67]

प्राण शर्मा ब्रिटेन की चर्चित कहानीकार हैं। प्राण शर्मा की कहानी 'पराया देश' का प्रकाशन 1982 की अगस्त कादम्बिनी में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय कहानी प्रतियोगिता में सांत्वना पुरस्कार से सम्मानित हुई। लेखिका ने इस कहानी में एक ऐसे व्यक्ति के जीवन का चित्रण किया है जो ब्रिटेन में बस चालक होता है और भारत वापसी के लिए दिन-रात अपने घर वालों को मनाता है। वह व्यक्ति निश्चय कर के आता है कि सिर्फ़ पाँच वर्षों में 'खूब धन कमाकर भारत लौट जाएगा।' किन्तु उसके लौटने की घड़ी कभी नहीं आती। कहानी नॉस्टैल्जिक होते हुए भी यथार्थ की भाव-भूमि पर खड़ी है। मानसिक द्वन्द्व और आंतरिक संघर्ष को व्यक्त करते हुए जीवन के दोनों पक्षों को दिखाने में सक्षम कहानी पाठक को सोचने के लिए मजबूर करती है कि ऐसे नए परिवेश में समझौता सही है या पलायन। ब्रिटेन में बरसों बरस रहते हुए लौट जाने की द्वन्द्वात्मक दुविधा में फँसे बस चालक की 'एक दिन एक सभ्य-सी दिखने वाली गोरी महिला से झड़प हो जाती है। वह महिला उसे फटकारते हुए 'ब्लैक बास्टर्ड' जैसी नस्ली गाली देकर उसका नाम और बस का नंबर लेकर धमकाते हुए चली जाती है। डरा हुआ भीरु, बस चालक स्वयं को अपमानित और पीड़ित महसूस करता है। जब वह अपनी पीड़ा अपनी पत्नी और दोस्तों से बताता है तो सब उसका मज़ाक उड़ाते हैं। विडंबना यह है कि वह अपने लोगों के बीच खुद को अकेला महसूस करता है और भारत लौटने का निश्चय करता है। उसे ब्रिटेन की कोई भी सुख-सुविधा सुकून नहीं देती। वह भारत के अभावों-तनावों, रंग-भेद, वर्ण-भेद, प्रांतीयता आदि को अनदेखा कर उसे ही स्वर्ग ठहराता है और अपनी पत्नी से वापस लौटने की गुजारिश करता है लेकिन उसकी पत्नी सुषमा उसे शांत करने के लिए कहती है, 'अगर आप इस देश से इतना तंग आ गए हैं तो एक दिन हम यहाँ से चले जाएँगे। बस बच्चों की शिक्षा

[67] पॉल, नीना: तेजेंद्र शर्मा-व्यक्ति और संस्था (आलेख), कुमारी, डॉ. कमलेश (संपा.), प्रवासी कथाकार तेजेंद्र शर्मा मुद्दे और चुनौतियाँ, पृ. सं. 90

पूरी हो जाने दो और उनको अपने पैरों पर खड़ा हो जाने दो।' बस चालक की भारत लौटने की इच्छा और उसकी पत्नी की विदेश में रहने की बलवती इच्छा को कहानीकार ने चित्रित किया है।

ब्रिटेन की हिंदी कहानियों के विषय में डॉ. रामदरश मिश्र लिखते हैं- "किसी स्थान विशेष के लेखकों की रचनाएँ होने मात्र से उन्हें वैशिष्ट्य प्राप्त नहीं होता, उन्हें वैशिष्ट्य प्राप्त होता है कि वे स्थान विशेष (क्षेत्र, प्रदेश, देश) के जीवन के अपने रंग को उभारती हैं और इस तरह वे उस भाषा में लिखे जा रहे साहित्य के अनुभव को नए आयाम प्रदान करती हैं.. विदेश में रह रहे भारतीय मूल के लोगों में देश की जिन असुविधाओं से घबराकर विदेश गए वे सामने आ जाती हैं और विदेश की सुविधाएँ भी उन्हें कहाँ छोड़ती हैं, जिनसे खिंचकर वे विदेश गए। इसी द्वन्द्व की मानसिकता में उनकी रचनाएँ फूटती रहती हैं।"[68]

नब्बे के दशक में डॉ. लक्ष्मीलाल सिंघवी ने ब्रिटेन में भारतीय उच्चायुक्त का पद भार संभाला। उनके ब्रिटेन आगमन के बाद से हिंदी साहित्य की दशा और दिशा में सकारात्मक परिवर्तन हुआ। "डॉ. लक्ष्मीलाल और उनकी पत्नी ने ब्रिटेन आते ही अपने घर अनौपचारिक साहित्यिक गोष्ठियाँ और चर्चाओं के द्वारा प्रवासी हिंदी साहित्य की सुस्त अवरुद्ध लेखनियों को गतिशील बनाया और पत्थर होती संवेदनाओं को जलसिंचित किया। भारतीयों का मनोबल बढ़ा। उनकी कुंठित जिह्वा और लेखनी मुखरित होने लगी।"[69]

नब्बे के दशक में अचला शर्मा की कुछ कहानियाँ प्रकाशित हुई जिनमें 'चौथी ऋतु', 'दिल में एक कस्बा है', 'दुर्गन्ध', रंग बदलता आसमान', 'मेहरचंद की दुआ' आदि प्रमुख हैं। इन कहानियों में लेखिका ने प्रवासी भारतीयों द्वारा पाश्चात्य समाज में अपनी पहचान के लिए संघर्ष कर रहे लोगों का चित्रण किया है। 'मेहरचंद की दुआ' कहानी में लेखिका ने उपन्यास के मुख्य पात्र मेहरचंद के माध्यम से मानवता को

---

[68] सक्सेना, उषा राजे: ब्रिटेन में हिंदी कहानी के 30 वर्ष', पाण्डेय नन्द किशोर (संपा.) प्रवासी जगत (पत्रिका), केंद्रीय हिंदी संस्थान, पृ. सं. 83

[69] वही पृ. सं. 83

सर्वोपरि धर्म बतलाया है। मेहरचंद जो खुद को ईश्वर का बंदा मानता है वह पूरे दिन केवल लोगों की भलाई के लिए ईश्वर से दुआ माँगता है। उसके हाथ केवल ईश्वर से दुआ माँगने के लिए उठते हैं।

उषा राजे सक्सेना ने 1997 में ब्रिटेन में कुछ कहानीकारों को शामिल कर 'छठे विश्व हिंदी सम्मेलन' के अवसर पर 17 लेखकों की कहानियों को संकलित कर 'मिट्टी की सुगंध' शीर्षक से प्रकाशित कराया। यह पुस्तक ब्रिटेन में प्रवासी हिंदी कथा साहित्य के अध्ययन में नींव का पत्थर है। सन् 1997 में 'पुरवाई' पत्रिका का प्रकाशन हुआ। इस पत्रिका में उषा राजे सक्सेना की पहली कहानी 'सफ़र में' का प्रकाशन हुआ। कहानी में लेखिका ने एक बाईस वर्षीय बेबस, लाचार और अपने भीतर असीम पीड़ा को छुपाते हुए भी चेहरे पर मासूम मुस्कुराहट के साथ जी रही शबनम के जीवन का चित्रण किया है | अपने सहपाठी के पुत्र के विवाह समारोह के उपरांत सिकंदराबाद से दिल्ली लौटते हुए ट्रेन के महिला कोच में लेखिका की मुलाकात शबनम से होती है | इस डिब्बे में जरूरत से ज्यादा लोग थे जिससे लेखिका को बैठने तक की दिक्कत हो रही थी | रेलगाड़ी में तीसरी श्रेणी में यात्रा कर रहे लोग उसे गंदे, उजड्ड और गँवार जान पड़ते हैं, कुछ समय बाद उसकी दृष्टि 'जर्द चेहरे वाली उदास' और मासूम महिला पर ठहरती है जिसका एक चौदह महीने का बच्चा इधर-उधर बैठे हुए लोगों से मिल-जुल रहा है, दूसरा बच्चा उसकी गोद में करवटें बदल रहा है और तीसरा बच्चा उसके पेट में है। वह महिला कभी एक बच्चे को सँभालती, कभी दूसरे बच्चे को। धीरे-धीर लेखिका को उस भीड़ से हमदर्दी होने लगती है उन लोगों के अपनत्व एवं मिलनसार व्यवहार से प्रभावित होती है। इन लोगों के प्रति उनके मन में संवेदना उत्पन्न होती है- “उनके चेहरे निचुड़े हुए थे। उनके बदन पर मांस बहुत कम था। उनके बदन के कपड़े बदरंग थे। उनकी बोली में अजीब सी दास्तान थी; पर उनमें एक अजीब सा सहयोग था।.... वे लोग मुझे ज़मीन के लोग लगे। जो कुचले हुए हैं, पर उठे हुए हैं। ये वे लोग हैं जिनके पास ज़मीन की चुभन है। जिनकी जेंबें फटी हैं, पर उनमें पैबंद लगाने की गुंजाइश है।”[70] लेखिका अपनी कहानियों की रचना प्रक्रिया के बारे में लिखती हैं- "कहानीकार का संवेदन संस्कार के रूप में अपने परिवेश को ग्रहण करता है। वह उसी में जीता है। साँस

[70] सक्सेना, उषा राजे: प्रवास में, गंगा ज्ञान प्रकाशन, पृ. सं. 100

लेता है। प्रवासी लेखक अपने घर-परिवार, देश और मिट्टी से अलग होकर एक अन्य देशकाल और परिवेश में चला जाता है। वहाँ उसके नए संस्कार बनते हैं, नए दृष्टिकोण बनते हैं, माहौल बदल जाने से उसकी ज़िन्दगी में बहुत- सी पेचीदगियाँ आ जाती हैं। यही द्वन्द्व के आरम्भ का प्रारम्भ होता है और यहीं मेरी कहानियाँ जन्म लेती हैं…"[71]

विदेश में रहने वाले भारतीयों की जीवन-शैली के दुःख-दर्द और तनाव के बारे में हिंदी में जितना भी लिखा गया है, उषा राजे सक्सेना की रचनाएँ उसी क्रम में शामिल हैं। उषा राजे सक्सेना का अन्य कहानी संग्रह 'प्रवास में' 2002 में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की सभी कहानियाँ ब्रिटेन के परिवेश पर आधारित हैं। इस संग्रह की कहानियों की विषयवस्तु में संबंधों को नए ढंग से जीने का अभ्यास दिखाई पड़ता है। 'शुकराना', 'यात्रा में', 'अभिशप्त' और 'समर्पिता' इस संग्रह की बेहतरीन कहानियाँ हैं। हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध कथाकार कमलेश्वर उषा राजे सक्सेना के कहानी संग्रह 'प्रवास में', के बारे में लिखते हैं- "उषा राजे सक्सेना की इन कहानियों की एक सबसे बड़ी खासियत यह है कि वह कहानियों में खुद किसी तरह के घटनाक्रम या चरित्र उद्घाटन का ताना-बाना नहीं बुनतीं, उनके पात्र स्वयं उनके पास चलकर अपना रहस्योद्घाटन करते हैं। जो अक्सर सफ़र में घटित होते हैं। यहाँ पात्र अपने चरित्र और किस्से को बयान करते हैं। इन कहानियों में किसी तरह का मनोविश्लेषण या विचार-विश्लेषण नहीं किया गया है। फ़्लैश बैक का प्रयोग सभी कहानियों में है। यद्यपि उषा राजे की कहानियाँ चरित्र उद्घाटन की कहानियाँ नहीं हैं, परन्तु मानवीय जीवन की ऊष्मा और सहिष्णुता से परिपूर्ण है। पश्चिम की धरती पर लिखी जाकर भी नितांत पूर्वी संवेदना और शैली से संपृक्त हैं, ये कहानियाँ।"[72]

दिव्या माथुर भी ब्रिटेन की चर्चित प्रवासी हिंदी कथाकार हैं। उनकी शुरूआती दौर की कहानियाँ 'पुरवाई' पत्रिका में छपी हैं। इनका कहानी संग्रह 'आक्रोश', 'पंगा' और 'आशा' प्रकाशित हुआ है। दिव्या माथुर की कहानियाँ उस स्त्री का चित्रण करती हैं जिसके लिए देश हो या विदेश सब यातना शिविर हैं।

---

[71] वही भूमिका से

[72] सक्सेना, उषा राजे: प्रवास में, गंगा ज्ञान प्रकाशन, फ्लैप से

सब विसंगत हैं। उन्होंने ब्रिटेन की रंगीनी नहीं, धूमिल छवि प्रस्तुत की है। दिव्या माथुर भारत से दूर रहकर भी अपने मीठे और कटु अनुभवों को गहराई से अभिव्यक्त करने की कोशिश कर रही हैं। अपनी रचनाओं के माध्यम से वे एक ऐसे समाज और संस्कृति की स्थापना करना चाहती हैं जहाँ स्त्री को समानता का अधिकार मिले और वे सम्मानपूर्वक जीवन-यापन कर सकें। भारत हो या विदेश स्त्री के लिए संघर्ष दोनों जगह है जो विभिन्न रूपों में दिखाई पड़ता है। भारत की अपेक्षा मेजबान देशों में स्त्री अधिक स्वतंत्र एवं आत्मनिर्भर है लेकिन पितृसत्तात्मक समाज की जकड़न और उससे मुक्त होकर अपने अस्तित्व को सिद्ध करने की चुनौती वहाँ भी है। आज भी भारत से आई स्त्रियों का मनोविज्ञान आधुनिक देशों में बसी स्त्रियों से बहुत अलग है। विदेशों में बसी भारतीय स्त्रियाँ मानसिक रूप से गुलाम ही हैं। वे नए मूल्यों से रूबरू तो हैं उनके प्रति आकर्षित भी हैं पर दुविधा में हैं। उन्हें मुक्ति का अर्थ तो मालूम हो चुका है पर वे अभी या तो उसे अपनाने के लिए हिम्मत जुटाने की प्रक्रिया में है या दुविधा-ग्रस्त। रमणिका गुप्ता इन्हें दुविधा-ग्रस्त पीढ़ी कहती हैं। दिव्या माथुर अपनी कहानियों में भारत से विदेश प्रवासित स्त्रियों के मानसिक द्वन्द्व और जीवन-संघर्ष को बहुत बेबाकी से चित्रित करती दिखाई पड़ती हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में उन स्त्रियों को भी कठघरे में खड़ा किया है जो स्त्री होकर स्त्री के विरुद्ध साजिश करती हैं। अगर कोई पुरुष स्त्री का साथ दे, उसकी घर के कामों में मदद करे तो उसके लिए जोरू का गुलाम जैसी उक्तियाँ का प्रयोग किया जाता है। उनकी कहानी 'सफ़रनामा' इसी भाव की कहानी है। कहानी की नायिका विजया है जो पेशे से लेखिका है और स्त्री मुद्दे पर बेबाकी से लिखती है। कहानी का नायक अनूप है जो विजया से प्रश्न करता है। अनूप द्वारा यह पूछने पर कि आपने भारतीय पुरुषों को स्त्री विरोधी क्यों दिखाया है? इस पर विजया कहती है, "भारतीय पुरुष, सामाजिक, मानसिक व व्यवहारिक स्तर पर वहीं खड़ा है जहाँ वो सौ साल पहले था… प्रगति के नाम पर उन्हें समझदार नौकरी–याफ़्ता पत्नी चाहिए… चाहे पत्नी स्वयं दफ्तर से थकी आई हो पति चाहेगा कि वह शाम को जब लौटे पत्नी सजी सँवरी ताजा चाय के कप लिए मुस्कराती मिले.. इन सबके बाद भी आज की नारी न तो एक अच्छी पत्नी साबित हो पाती है न बहू और

न एक अच्छी माँ।"[73] अनूप के माध्यम से दिव्या माथुर औरतों में व्याप्त पुरुषवादी मानसिकता पर सवाल उठाती हैं। अनूप विजया की बातों को सुनते हुए कहता है कि "आप ठीक कहती हैं कि पुरुष वर्ग बदलना नहीं चाहता। इस दोष में बराबर की साझेदारी क्या महिलाओं की नहीं? अपने ही बेटों और भाइयों को बदलता देख वे उनका जीना दूभर कर देती है कि जोरू का गुलाम हो गया है।"[74] उनकी एक अन्य कहानी 'दिशा' सुखी दाम्पत्य जीवन पर आधारित है। कहानी में लेखिका के नेत्रविहीन पति और स्वस्थ सुंदर पत्नी के प्रेम और एडजस्टमेंट को चित्रित किया है।

तेजेंद्र शर्मा ब्रिटेन के चर्चित प्रवासी हिंदी कथाकार हैं। उनके कई कहानी संग्रह प्रकशित हो चुके हैं जिनमें 'काला सागर', 'देह की कीमत', 'पासपोर्ट का रंग', 'बेघर आँखें', 'सीधी रेखा की परतें', 'कब्र का मुनाफ़ा' प्रमुख हैं। उनकी कहानियों में विषयवस्तु की विविधता स्पष्ट नज़र आती है। यह एक बड़े लेखक की खूबी ही है। उनकी कहानियों में विषयवस्तु की विविधता को देख कर यह लगता है कि वह आसपास घटित होने वाले घटनाक्रमों पर सूक्ष्म दृष्टि रखते हैं तभी उनकी प्रत्येक कहानी नवीनता का पुट समेटे हुए है। तेजेंद्र जी की कहानियों के संसार को वास्तविकता के धरातल पर स्थित सामान्य मनुष्यों का यथार्थ माना जा सकता है जो कि विभिन्न समस्याओं और विसंगतियों से परिपूर्ण है। उनकी कहानियों में स्त्री-पुरुष संबंधों को प्रमुखता से उठाया गया है। भौतिकवादी दृष्टिकोण, पारिवारिक बिखराव एवं संवेदनहीनता उनकी कहानियों में जगह-जगह दिखाई देती है। उनकी कहानियाँ न सिर्फ़ मानवीय संबंधों की पोल खोलती हैं बल्कि स्वार्थी रिश्तों को बेनक़ाब करती हुई नज़र आती हैं। देह की क़ीमत, काला सागर, दंश, रिश्ते, क़ब्र का मुनाफ़ा, कुछ आख़िरी दिन, अभिशप्त और कैंसर जैसी कई कहानियाँ इन मुद्दों की गहराई से पड़ताल करती हैं।

इनके अलावा ब्रिटेन के मुख्य कहानीकार और उनके कहानी-संग्रह हैं, शैल अग्रवाल का 'ध्रुवतारा', कादम्बिरी मेहरा का 'कुछ जग की', 'पथ के फूल', महेंद्र दवेसर 'दीपक' का कहानी संग्रह 'पहले

---

[73] माथुर, दिव्या: आक्रोश, हिंदी बुक स्टोर, पृ. सं. 44

[74] वही पृ. सं. 44-45

कहा होता', 'पुष्प दहन', 'बुझे दीये की आरती' तथा 'अपनी-अपनी आग'। के. सी. मोहन का 'कथा परदेश'। नीना पॉल का 'शराफ़त विरासत में नहीं मिलती', 'रिहाई' (उपन्यास)। उषा वर्मा द्वारा सम्पादित महिला कथाकारों की पुस्तक 'सांझी कथा यात्रा'। गौतम सचदेव की 'सच्चा झूठ'। इन रचानकारों के अलावा भी ब्रिटेन में कई रचनाकार लगातार साहित्य सृजन कर रहे हैं।

1.4 अमरीका के प्रमुख हिंदी कथाकार और उनकी कृतियाँ

अमरीका में रचे जा रहे प्रवासी हिंदी साहित्य ने हिंदी साहित्य को एक नया आकाश और सृजनात्मक भावभूमि प्रदान की है। अमेरिका में प्रवासी हिंदी कथा साहित्य लिखने की शुरुआत करीब साठ के दशक से मानी जा सकती है। प्रवास की जटिल प्रक्रिया में रचनाकारों के लिए उनका लेखन संबल की तरह था। नए परिवेश में 'एडजस्टमेन्ट' करते और 'मिसफिट' होते प्रवासियों की पीड़ा और द्वन्द्व की भावाभिव्यक्ति प्रवासी साहित्य के माध्यम से हुई। अमेरिका की प्रवासी कथाकार सुषम बेदी अमेरिका में हिंदी कथा साहित्य के आरम्भ के संदर्भ में लिखती हैं- "अमेरिका का हिंदी कथा साहित्य साठ के दशक में प्रकाश में आया, जब त्रिवेणी (उषा प्रियंवदा, सोमावीरा, सुनीता जैन) ने विश्व को अमेरिका के कथा साहित्य से परिचित कराया। साठ के दशक में त्रिवेणी की लेखनी में अमेरिकी जीवन की झलक साफ दिखाई देती है। इन्होंने भारतीय हिंदी साहित्य का परिचय एक ऐसे कथा- संसार से कराया, जो इससे पहले हिंदी साहित्य से अनजान था।"[75]

अमरीका में रहने वाले प्रवासी हिंदी साहित्यकारों ने अपने लेखन के माध्यम से हिंदी जगत में अपनी पहचान बनायी। इन रचनाकारों में उषा प्रियंवदा, सोमावीरा, सुषम बेदी, सुधा ओम ढींगरा, इला प्रसाद, अनिल प्रभा कुमार, पुष्पा सक्सेना, रेणु राजवंशी 'गुप्ता', सुदर्शन 'प्रियदर्शिनी', विजय चौहान, शालीग्राम शुक्ल, उमेश अग्निहोत्री, पंखुरी सिन्हा, अमरेंद्र कुमार प्रमुख हैं।

[75] ढींगरा, सुधा ओम: हिंदी कथा साहित्य में अमेरिकी परिवेश (आलेख), गवली, डॉ. कल्पना (संपा), हिंदी प्रवासी कथा साहित्य, पृ. सं. 32

अमरीका की प्रवासी कथाकार सुषम बेदी के कई उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें 'हवन', 'लौटना', 'कतरा दर कतरा', 'नवभूमि की रसकथा', 'गाथा अमरबेल की', 'इतर', 'मैंने नाता तोड़ा', 'मोर्चे', 'पानी केरा बुदबुदा'। उन्होंने उपन्यास के साथ-साथ कहानियाँ भी लिखीं। उनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं, 'चिड़िया और चील', 'यादगार कहानियाँ', 'तीसरी आँख', 'सड़क की लय'। अमेरिकी समाज में अर्थ का महत्व सर्वोपरि है, लोगों ने अपने अस्तित्व का आधार अर्थ को बना लिया है। विदेशी सभ्यता की भौतिक चमक-दमक से आकर्षित होकर विदेश जाने वाले व्यक्ति वहाँ पहुँचकर उल्लास और आनंद को प्राप्त करने के प्रयास में अपने जीवन को कैसे होम कर रहे हैं, इसका बेजोड़ चित्रण हवन में हुआ है। वे लिखती हैं- "हर हिंदुस्तानी यहाँ एक व्यापारी है, अमेरिका के एक बड़े बाज़ार में हिंदुस्तानी अपनी प्रतिभा, ज्ञान, कौशल और अनुभव को लेकर आता है और चढ़ा देता है खुद को नीलामी पर। अच्छा दाम लग जाए तो क्या खूब बढ़िया-सी नौकरी, सुंदर-सा घर, नमकीन-सी बीवी और बला की गर्लफ्रेंड सबका सौदा हो जाता है। न बढ़िया दाम लगें तो भी बैरे या दुकानदार की नौकरी ही सही। ले-देकर किसी को यह सब घाटे का सौदा नहीं लगता।"[76]

'लौटना' सुषम बेदी द्वारा लिखित दूसरा उपन्यास है। 'लौटना' उपन्यास में एक औरत की अस्मिता की खोज की कहानी है, जो एक नए परिवेश में अपनी जड़ें ज़माने के लिए एक सही बिंदु तलाश रही है। नायिका मीरा का विवाह विजय से होता है और विवाह के पश्चात् वह अमेरिका पहुँचती है। वह एक नर्तकी है उसे अपने शौक को आगे बढ़ाना है, किन्तु मशीनी ज़िन्दगी में उसकी ख्वाहिशें कहीं दबकर रह जाती हैं। पारिवारिक जिम्मेदारियों को निभाते हुए उसे अपनी इच्छाओं का गला घोंटना पड़ता है। अब पति भी उसकी ओर से मुँह मोड़ लेता है। इस उपन्यास में बदलते रिश्तों की पर्तों को खोला गया है। सुषम बेदी ने 'हवन' उपन्यास के अगला चरण की कथा को 'लौटना' उपन्यास में अभिव्यक्त किया। वे स्वयं लिखती हैं- "'लौटना मेरे मन और अनुभव के बहुत करीब है। जो 'हवन' में नहीं कह पाई थी, वह 'लौटना' का फोकस हो गया। हवन में सामाजिक और बाहरी संघर्ष ज़्यादा था। इतनी ढेर सारी आहुतियाँ जो डालनी थीं। पर

---

[76] बेदी, सुषमः हवन, पेंगुइन प्रकाशन, पृ. सं. 129

'लौटना' में औरत की उस अंदरूनी कसमसाहट और तकलीफ को व्यक्त करने की छटपटाहट थी, जो यहाँ के माहौल में अपने को पूरी तरह से खो रही थी। फिर भी अपने प्राकृतिक पर्यावरण में लौट नहीं सकती थी क्योंकि उसका जीवन अब एक निश्चित स्थान और दिशा में बँध गया था। इस तरह 'लौटना' की मीरा का जन्म हुआ। मीरा मेरे लिए उन सब आंतरिक विषमताओं और अंतर्विरोधों का प्रतीक बन गयी थी, जिसे यहाँ रहते हुए मैंने सभी भारतीयों में देखा। उसकी तकलीफ जैसे हर अप्रवासी की तकलीफ थी। हम लोग जो ऊपर से इतने खुश, इतने सफल और एकदम मजबूत इंसान दिखते हैं, भीतर से कितने अकेले, कितने कमजोर और खोखले हैं।"[77]

सुधा ओम ढींगरा प्रवासी हिंदी साहित्य की महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। इनके महत्वपूर्ण कहानी-संग्रह है, 'कौन-सी ज़मीन अपनी', 'कमरा नम्बर 103' और 'वसूली'। सुधा जी ने 'नक्काशीदार कैबिनेट' नामक उपन्यास की रचना की। साथ ही पंजाबी के श्रेष्ठ उपन्यास 'परिक्रमा' का हिंदी अनुवाद किया। 'कौन-सी ज़मीन अपनी' संग्रह की कहानियों में लेखिका ने भारतीय परंपराओं और पाश्चात्य विचारधाराओं को एक सूत्र में बाँधकर देश, काल और परिस्थितियों का चित्रण किया है। इन कहानियों में मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं, सामाजिक विद्रूपताओं, कुंठाओं का यथार्थ अंकन दिखाई पड़ता है। प्रेम जनमेजय सुधा ओम ढींगरा की कहानियों की बुनावट के बारे में लिखते हैं- "सुधा ढींगरा की इन कहानियों में प्रवासी मन के उस अनछुए कोने का सहज संवेदनशील वर्णन है… सुधा की कहानियों के पात्र प्रवासी मन की ज़िन्दगी के विभिन्न कोनों को जीते दिखाई देते हैं। मंदी से गुजरते अमेरिका में मृगतृष्णा में लिप्त हिंदुस्तानी परिवार की गति, अपनी हिंदुस्तानी सोच से घिरी माँ द्वारा अमेरिकी माहौल में पली बेटी को अकेले पालने की कशमकश, अपनी मिट्टी से जुड़े मन की वापस लौटने पर रिश्तों द्वारा की गयी खराब मिट्टी है, जो कहलवाने को विवश करती है- 'गरीबी तो हट गई, पर पैसे की गर्मी ने, रिश्ते ठंडे कर दिये'। जैसे इंद्रधनुष अपने

[77] ढींगरा, सुधा ओम: वैश्विक रचनाकार, कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ, भाग-01, शिवना प्रकाशन, पृ. सं. 24

एकाकार रूप से मन को विभिन्न रंगों की विविधता के साथ एक रूपाकृति देता है, कुछ वैसा ही अनुभव सुधा ढींगरा की इन कहानियों को पढ़कर होता है।"[78]

लेखिका का अन्य कहानी संग्रह 'कमरा नम्बर 103' विभिन्न विषयों को लेकर लिखा गया कहानी संग्रह है, इसमें सात कहानियाँ संकलित हैं। इस संग्रह की कहानी 'आग में गर्मी क्यों है?' समलैंगिकता को आधार बनाकर लिखी गयी है। कहानी में वे सभी समस्याएँ उजागर की गयी हैं, जो समलैंगिकता से जुड़ी है। समस्या के वैज्ञानिक पक्ष पर भी लेखिका ने लिखा है। कहानी का छोटा-सा अंश है- "कल ही मैंने समाचार-पत्र में पढ़ा था कि कैलिफोर्निया के पब्लिक स्कूलों के कोर्स में लिंग और सेक्स से जुड़ा हर नया शोध पढ़ाया जायेगा, ताकि युवा पीढ़ी को इसका सही ज्ञान हो। पर हमारे बच्चे अभी बहुत छोटे हैं, उन्हें स्त्री-पुरुष संबंधों की जटिलताओं का पता नहीं और मैं बताना भी नहीं चाहती। यह भी नहीं चाहती कि लोगों को इस समय आपके इस संबंध का पता चले और बच्चों तक बात पहुँचे। हम दोनों के माँ-बाप इस सदमे को सह नहीं सकेंगें। जेम्स के लिए मैं आपको अपने बंधन से मुक्त करती हूँ। हाँ, अब आप हमारे बेडरूम में नहीं, अलग कमरे में सोयेंगे।"[79]

पुष्पा सक्सेना भी अमेरिकी हिंदी प्रवासी कथा साहित्य की महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। उनके कई कहानी संग्रह प्रकशित हो चुके हैं जिनमें, 'अलविदा', 'उसके हिस्से का पुरुष', 'सूर्यास्त के बाद', 'उसका सच', 'पीले गुलाबों के साथ एक रात', 'एक नया गुलाब', 'अनोखा रिश्ता'। कहानी के अलावा उन्होंने उपन्यासों की भी रचना की। 'वह साँवली लड़की', 'ऋचो', 'बाहों में सिमटा आकाश', 'लौट आओ तुम' उनकी औपन्यासिक कृतियाँ हैं। लेखिका ने अपनी कहानियों में अमेरिका में रह रहे भारतीयों के अमेरिकी जीवन के ताने-बाने को बुना है। उनके जीवन-प्रसंग, तनाव तथा सरोकारों को प्रस्तुत करते हुए वे अमेरिकी परिवेश एवं अपने आस-पास घट रही घटनाओं के साक्षात् अनुभवों को कहानी में रूपातंरित करती हैं। उनका उपन्यास 'वह साँवली लड़की' में लेखिका ने एक मध्यवर्गीय परिवार की सामान्य लड़की के जीवन-

---

[78] ढींगरा, सुधा ओम: कौन-सी ज़मीन अपनी, भावना प्रकाशन, फ्लैप से

[79] ढींगरा, सुधा ओम: कमरा नंबर 103, हिंदी साहित्य निकेतन, पृ. सं. 20

संघर्ष का मार्मिक चित्रण किया है। लेखिका लिखती हैं- "उपन्यास की नायिका एक साधारण परिवार की सामान्य लड़की है। मध्यवर्गीय परिवार की यह त्रासदी है कि इनमें बहुत-सी अंजू जैसी लड़कियाँ जन्म लेती हैं और अनाम जीवन-यात्रा पूर्ण कर, खो जाती हैं। उनकी बुद्धि-प्रतिभा अक्सर अपनी पहचान बनाये बिना ही घर-गृहस्थी में मर-खप जाती है। आज भी भारतीय परिवारों में लड़की का विवाह उसकी अंतिम नियति है।"[80] अंजू का जन्म ऐसे ही परिवार में हुआ था। पहली सगाई टूटने का दुःख अंजू को स्तब्ध कर देता है, लेकिन किसी व्यक्ति को अपना अंतिम सत्य न मानकर अंजू अपने जीवन में आगे बढ़ने का फैसला लेती है और नए सिरे से जीवन जीना शुरू करती है।

1.5 प्रवासी कथा साहित्य में उषा प्रियंवदा का स्थान

प्रवासी महिला कथाकारों की सुदीर्घ पंक्ति में जिन महिला कथाकारों का नाम विशेष रूप में उल्लेखनीय रहा है, उनमें उषा प्रियंवदा का नाम प्रमुख है। प्रवासी कथा साहित्य में उषा प्रियंवदा का स्थान या उनकी भूमिका के बारे में बात करें तो हम देखेंगें कि उषा प्रियंवदा स्वतंत्रता के पश्चात्, अध्ययन और अध्यापन कार्य करने के लिए सत्तर के दशक में अमेरिका गयीं। लगभग पाँच दशक से वह अमेरिका में रह रही हैं। उन्होंने हिंदी भाषा और साहित्य को वैश्विक पटल पर प्रतिष्ठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। साथ ही अपने समकालीन रचनाकारों के लिए भी हिंदी की उर्वर भूमि तैयार की जिसपर चलकर अन्य रचनाकारों ने अपने साहित्यिक-लेखन के बीज बोये।

प्रवासी जीवन पर आधारित उनके प्रमुख उपन्यास हैं, 'रुकोगी नहीं राधिका', 'शेषयात्रा', 'अन्तर्वंशी', 'भया कबीर उदास', 'नदी', और 'अल्पविराम'। उपन्यास के अलावा उनके कई कहानी-संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें 'एक कोई दूसरा', 'कितना बड़ा झूठ', 'शून्य तथा अन्य रचनाएँ' आदि हैं। उषा जी का रचना संसार विपुल और बहुवर्णी है। भारतीय और पाश्चात्य जीवन-शैली उनकी रचना का उपजीव्य है। भारतीयता और दीर्घकालीन प्रवास से भोगे हुए अनुभवों को एक साथ उनकी रचनाओं में

---

[80] सक्सेना, पुष्पा: वह साँवली लड़की, यात्री प्रकाशन, फ्लैप से

देखा जा सकता है। उन्होंने कहा भी है - "प्रवास में रहकर दृष्टि प्रखर हुई, पर भारतीयता या संस्कार नहीं छूटे।''[81] उषा प्रियंवदा ने अपनी रचनाओं में प्रवासी जीवन की ऊब, छटपटाहट, घुटन, पीड़ा, संत्रास और अकेलेपन को अनुभूति के स्तर पर पहचाना तथा उनका अंकन करने में गहरे यथार्थबोध का परिचय दिया। उनकी कहानियों में सामाजिक विडम्बनाओं, टूटते पारिवारिक सम्बन्ध, टूटते दाम्पत्य संबंध, विवाहेतर संबंध, प्रवासी स्त्री का आंतरिक और बाह्य द्वंद्व व स्त्री जीवन के विविध पक्षों का मार्मिक चित्रण दिखाई पड़ता है।

उषा प्रियंवदा ने स्त्री के भावनाशील मनोजगत और अंतर्द्वंद्व को बहुत बारीकी से पढ़कर कथा-साहित्य में रूपायित किया। एक स्त्री होने के नाते स्त्री- मनोविज्ञान से परिचित होना लाज़मी है, यही कारण है कि उनकी रचनाओं में स्त्री मन के विविध पक्षों का चित्रण दिखाई पड़ता है। उषा प्रियंवदा ने लिखा है- "मेरी चेतना और अनुभूति मध्यम वर्ग नारी जीवन में केंद्रित रही है और मेरी कहानियाँ उसी के चित्रण तक सीमित है। मैंने उसकी अनेक समस्याओं, उसकी मौन, व्यथा, विवशता, निराशा और फ़्रस्ट्रेशन्स को वाणी देने का प्रयास किया है। मेरी कहानियों में नारी दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से उभरता है।"

उषा प्रियंवदा का लेखन भारतीय और पाश्चात्य समाज की उपज है। वह स्वयं इस बात को स्वीकारती हैं। उनके साहित्यिक कर्म को बारीकी से देखने पर हम पायेंगे कि भारत में रहते हुए और अमेरिका जाने के बाद उनकी लेखनी में अंतर आया है। उनकी आरंभिक दौर की रचनाएँ और 1970 के बाद लिखी गयी रचनाएँ इसका प्रमाण है। यहाँ निर्मला जैन का कथन उल्लेखनीय है, उषा प्रियंवदा की प्रवास के दौरान लिखी गयीं कहानियों के संदर्भ में वे कहती हैं- "उषा प्रियंवदा ने लम्बी कहानियाँ विशेष रूप से अमेरिका प्रवास के पिछले दौर में लिखीं। शुरुआत वे 'एक कोई दूसरा' से कर चुकी थीं जो 1961 में 'नई कहानियाँ' में छपी थी। तब तक उनकी रचनाओं में प्रवासी जीवन का रंग गहरा नहीं हुआ था… पर बाद की कहानियों में प्रवासी जीवन के अनुभवों का आग्रह लगातार बढ़ता गया। यहाँ तक कि पाठकों को कहीं-कहीं बेगानेपन के एहसास की शिकायत होने लगी। यूँ उषा प्रियंवदा की अधिकांश कहानियाँ

[81] मिलिंद, सत्यप्रकाश: हिंदी की महिला साहित्यकार, रूपकमल प्रकाशन, पृ. सं. 38

मानवीय संबंधों की जटिलता की कहानियाँ हैं। उनके पात्र आम ज़िन्दगी में सम्पर्क में आने वाले अतिपरिचित-से पात्र नहीं होते। वे जिस जीवन और जिन पात्रों की कहानी कहती थीं, वह उस समय के अमरीकी परिवेश में जा बसे भारतीयों का सच हो सकता था, भारतवासियों का नहीं। कम-से-कम मध्यवर्ग के औसत भारतीय की जीवन-शैली से उसका बहुत लेना-देना नहीं था। चार दशक बाद दुबारा पढ़ने पर वही कहानियाँ उतनी बेगानी नहीं लगतीं। ग्लोबल विश्व के सूचना-संजाल से विकासशील देशों की जीवन-शैली कुछ ऐसी प्रभावित हुई है कि अब वही तथ्य वैसे नहीं चौंकाते जैसे आधी शताब्दी पहले चौंकाते थे।"[82]

उनका प्रथम कहानी संग्रह 'फिर बसंत आया' की कहानियों में स्त्री विमर्श का पहला चरण दिखाई पड़ता है। उनकी आरंभिक दौर की नायिकाएँ परिस्थितियों का विरोध तो करती हैं लेकिन अंततः परिस्थितियों से समझौता करती नज़र आती हैं। इस संग्रह की कहानी 'नष्ट नीड़' में लेखिका ने समीर और रीना के प्रेम रुपी नीड़ के टूटकर बिखर जाने की करुण भावना को व्यक्त किया है। वहीं अमेरिका जाने के बाद उनकी नायिकाएँ बोल्ड रूप में नज़र आती हैं। विदेश प्रवास के दौरान प्रकाशित कहानी संग्रह 'कितना बड़ा झूठ' में लेखिका ने पाश्चात्य समाज में संबंधों के खुलेपन का यथार्थ चित्रण किया है। विवाह पाश्चात्य समाज में 'एक मीनिंगलेस -सी रस्म' है। 'प्रतिध्वनियाँ' कहानी में वसु विवाह को मीनिंगलेस रस्म मानती है। अपने पति को तलाक देकर वह कई पुरुषों के संसर्ग में रहती है लेकिन किसी के साथ विवाह के बंधन में बँधना उसे स्वीकार नहीं। अपने पति को तलाक देने के बाद वसु खुद को पूर्ण महसूस करती है। यही बात उनके उपन्यासों पर भी लागू होती है। 'पचपन खम्बे लाल दीवारें' उपन्यास में उन्होंने सुषमा का चित्रण एक ऐसी युवती के रूप में किया है जो अपने परिवार के लिए अपनी खुशियों की आहुति देती है। हालाँकि उषा प्रियंवदा इसे नारी विमर्श का पहला चरण मानती है, उनके अनुसार 'सुषमा ने परिवार के रूप में 'ग्रेटर गुड' को चुना और अपने व्यक्तिगत प्रेम को नकार दिया; यह नारी विमर्श का पहला चरण है।' प्रवास के पश्चात् लिखे गए उपन्यासों में उनकी नायिकाएँ स्त्री विमर्श के चरम पर दिखाई पड़ती हैं। शेषयात्रा की

[82] जैन, निर्मला: कथा समय में तीन हमसफ़र, राजकमल प्रकाशन, पृ. सं. 86

'अनु', अंतर्वंशी की 'वाना', भया कबीर उदास की 'लिली', नदी की 'आकाशगंगा' और अल्पविराम की 'शिंजनी' सभी नायिकाओं में क्रम से स्त्री चेतना के उत्तरोत्तर विकसित होते सोपान देखे जा सकते है।

वस्तुतः हिन्दी प्रवासी कथा साहित्य में उषा प्रियंवदा का महत्वपूर्ण स्थान है। सुषमा के अलावा उषा प्रियंवदा के उपन्यासों की नायिकाएँ देशी-विदेशी परिवेश में आती-जाती रहती हैं। यौन वर्जनाएँ और कुंठाएँ उनके चिंतन का हिस्सा नहीं हैं। जिजीविषा से सराबोर ये स्त्रियाँ जीवन को पूर्णतया स्वीकार करती हैं। जीवन जैसा भी जिस भी रूप में मिले अंततः अपने 'स्व' को पा ही लेती हैं। उनकी कथाओं में पुरुष न तो शत्रु है, न प्रतिद्वंद्वी। स्त्रियों द्वारा अस्मिता को पहचानने में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उन पुरुषों का भी योगदान है।

उषा प्रियंवदा ने कथावस्तु में जिन विषयों का चयन किया है वे विषय उनके अपने परिवेश की उपज हैं। स्वभावतः उन्होंने किसी अपवादों की या विरलों की नहीं, सामान्य लोगों की कहानियाँ लिखीं, जिन्हें हम अपने आस-पास देख सकते हैं। उनकी कहानियाँ भावनात्मक स्तर पर तो उत्कृष्ट हैं लेकिन वैचारिक स्तर पर शून्य हैं। इस संदर्भ में निर्मला जैन का कथन उल्लेखनीय है। वे उषा प्रियंवदा के उपन्यासों के संदर्भ में लिखती हैं- "उषा प्रियंवदा के ये उपन्यास अपनी सहज मार्मिकता में प्रभावित तो करते हैं, वैचारिक हिस्सेदारी के लिए आमंत्रित नहीं करते।"[83]

उनके उपन्यासों में बहुत ही सूक्ष्म और कोमल मनोभावों के साथ स्त्री मन पर्त-दर-पर्त खुलता है। कथ्यगत, विविधता, सहजता, सरलता इनकी लेखन-शैली की प्रमुख विशेषता है। उनकी कहानियों की विशेषता है उनके द्वारा दिए गए सूक्ष्म ब्यौरे। पात्रों के व्यक्तित्व निर्धारण में इन ब्यौरों का योगदान है। 'पिघलती हुई बर्फ़' कहानी में लेखिका ने एक बेजान कमरे का वर्णन इस प्रकार किया है, "बैठक में बेंत का एक सोफा व तीन-चार कुर्सियाँ थीं, बीच में एक गोल मेज। दीवारें सफेद और सूनी, कहीं एक भी चित्र नहीं। दरवाजों पर भूरे रंग के परदे थे जिनसे कमरा और भी उदास लग रहा था।"[84]

---

[83] जैन, निर्मला: कथा समय में तीन हमसफ़र, राजकमल प्रकाशन, पृ. सं. 154

[84] प्रियंवदा, उषा: कितना बड़ा झूठ, राजकमल प्रकाशन, पृ. सं. 97-98

लेखिका की नज़र केवल परिवेश पर ही नहीं अपने पात्रों पर भी बनी रहती है। काफ़ी डिटेलिंग के साथ उन्होंने पात्रों की वेशभूषा निर्धारित की। ध्यान देने की बात यह है कि अमेरिका प्रवास के दौरान ही उन्होंने परिवेश और पात्रों का सूक्ष्म वर्णन किया है। 'एक कोई दूसरा' की शुरुआत ही आत्ममुग्ध नायिका से इस वाक्य से होती है, "मैं अब भी सुंदर हूँ।"[85] अपने को इसी रूप में प्रस्तुत करने के प्रयास में "नीली सिल्क की साड़ी, उस पर चटक नारंगी बॉर्डर। नीला ब्लाउज साड़ी में कुछ ऐसा घुलमिल गया था कि सुनहरे तारों से बुना नारंगी बॉर्डर ही झिलमिला रहा था। बॉर्डर के रंग की वैसी ही चटक लिपस्टिक।"[86] इस कहानी में कुछ और आगे चलकर, "मैंने हलके पीले रेशम की सादी-सी साड़ी पहनी थी, जिसके आँचल के छोर पर पीले ही फुंदने लटक रहे थे। साड़ी से कुछ ही गहरा ब्लाउज, बाल सादे और पीछे जूड़ा। लिपस्टिक और दिनों से बहुत हल्की थी और वह गुलाबीपन मुझे अच्छा लगा।"[87] यह आत्मसजग और आत्ममुग्ध नायिका के अपने रूप का सौंदर्य वर्णन है।

इस तरह का सूक्ष्म वर्णन हम उनके समकालीन रचनाकारों की रचनाओं में नहीं पाते। इन प्रसंगों से गुजरते हुए हम सहज ही समझ लेते हैं कि ये ऐसी कलम की देन है जिसके पीछे "अमेरिका का स्थानीय मध्यवर्गीय समाज रोजमर्रा की ज़िन्दगी में अपने पहरावे के बारे में जितना सहज और बेपरवाह होता है उसकी तुलना में प्रवासी भारतीय विशेषकर स्त्रियाँ बहुत सजग रहती हैं। वहाँ के अकादमिक सम्मिलनों तक में उनकी सजधज देखने लायक होती है। विशेषकर प्रवासी जीवन के आरंभिक दौर में। उषा प्रियंवदा इसका अपवाद नहीं हैं। वेशभूषा के बारे में उनकी ठेठ भारतीय आत्मसजग मानस की छटा जगह-जगह दिखाई पड़ती है।"[88]

अतः कहा जा सकता है अन्य प्रवासी रचनाकारों की तुलना में उषा प्रियंवदा का रचना- संसार व्यापक और विस्तृत है। अमेरिकी परिवेश और प्रवासी भारतीयों की स्थिति को यथार्थ रूप में चित्रित

---

[85] वही पृ. सं. 09

[86] वही पृ. सं. 12

[87] वही पृ. सं. 18

[88] जैन, निर्मला: कथा समय में तीन हमसफ़र, राजकमल प्रकाशन, पृ. सं. 94

करना, परिवेश और पात्रों का बेहद सूक्ष्म वर्णन करना उनके लम्बे समय के प्रवास का ही परिणाम है। उषा प्रियंवदा ने सामयिक युग-बोध को उसकी सही पृष्ठभूमि में पकड़ने और ईमानदारी पूर्वक अभिव्यक्त करने का सफल प्रयास किया है। यह उषा प्रियंवदा की लेखनी की विशेषता है जो उन्हें उनके समकालीन रचनाकारों से अलग करती हैं।

हिंदी प्रवासी कथा साहित्य दो धाराओं में विभाजित है। पहली धारा के अंतर्गत वे कथाकार आते हैं जिनके पूर्वजों को गिरमिटिया मजदूर के रूप में मॉरीशस, फीजी, सूरीनाम, दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में ले जाया गया तथा जिन्होंने आजीवन अंग्रेज़ों की गुलामी कर कष्टमय जीवन व्यतीत किया। अपने पूर्वजों की पीड़ा, व्यथा, संघर्षपूर्ण जीवन तथा सामयिक बोध को इन रचनाकारों ने यथार्थ रूप में चित्रित किया। दूसरी धारा के अंतर्गत वे रचनाकार आते हैं जिन्होंने स्वेच्छा से विकसित देशों में स्थानांतरण किया। नए समाज, नवीन परिवेश और नए लोगों के बीच प्रवासियों द्वारा भोगे जाने वाले संकटों का मार्मिक चित्रण किया। अमरीका, ब्रिटेन, कनाडा, डेनमार्क आदि देशों के कथा साहित्य में अतीत के प्रति मोह, सांस्कृतिक आघात, अकेलापन, मानसिक द्वन्द्व, मूल्यों की टकराहट, अस्तित्व व अस्मिता मूलक संघर्ष दिखाई पड़ता है। एक विशेष बात जो दोनों ही धाराओं के रचनाकारों और उनकी रचनाओं में दिखाई पड़ती है वह है भारतीय बोध। दोनों ही प्रकार के प्रवासी साहित्य में भारत विद्यमान है चाहे वह धर्म या संस्कृति के रूप में हो या चाहे नॉस्टेल्जिया के रूप में। उषा प्रियंवदा दूसरी धारा के अंतर्गत आती हैं उन्होंने अपने कथा साहित्य में प्रवासी की पीड़ा का यथार्थ चित्रण किया। अन्य प्रवासी रचनाकारों की तुलना में उषा प्रियंवदा का रचना- संसार व्यापक और विस्तृत है। अमेरिकी परिवेश और प्रवासी भारतीयों की स्थिति को यथार्थ रूप में चित्रित करना, परिवेश और पात्रों का बेहद सूक्ष्म वर्णन करना उनके लम्बे समय के प्रवास का ही परिणाम है। अतः कहा जा सकता है कि उषा प्रियंवदा ने सामयिक युग-बोध को उसकी सही पृष्ठभूमि में पकड़ने और ईमानदारी पूर्वक अभिव्यक्त करने का सफल प्रयास किया है।

संदर्भ

58. मिरोठा, मुकेश कुमार: प्रवास और सूरीनाम का हिंदी साहित्य (आलेख), पाण्डेय, नन्द किशोर (प्रधान संपा.), प्रवासी जगत (पत्रिका), केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, पृ सं. 30

59. डॉ. विवेकानंद: फीजी में रामायण परंपरा (आलेख), दीपक, देवेंद्र (संपा.), साक्षात्कार पत्रिका, भोपाल : साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद, मई -जून संयुक्त अंक, 2007, पृ. सं 296

60.कर्नावट, डॉ. जवाहर: आपसी टकराव व खेमेबाजी के कारण हिंदी में विश्व स्तरीय रचनाएँ नहीं - अभिमन्यु अनत (साक्षात्कार), शांडिल्य, नरेश (संपा.) : अक्षरम संगोष्ठी (पत्रिका), नई दिल्ली, जनवरी-मार्च, 2006, पृ. सं. 21-22

61.धुरंधर, रामदेव: हिंदी प्रवासी कथा साहित्य (आलेख), गवली, डॉ. कल्पना (संपा.) हिंदी प्रवासी कथा साहित्य (भाग -1), कानपुर : माया प्रकाशन, 2018, पृ. सं. 24

62.गोयनका, डॉ. कमल किशोर, अभिमन्यु अनत की उपन्यास यात्रा (आलेख), प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय (संपा.), प्रवासी जगत (पत्रिका), केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, जनवरी -मार्च, पृ. सं. 23

63. उद्धरित सिन्हा, डॉ. दयाल प्यारी: अभिमन्यु अनत के उपन्यासों में प्रवासी-जीवन का यथार्थ (शोधालेख), रमा (संपा), प्रवासी हिंदी साहित्य विविध आयाम, दिल्ली : साहित्य संचय, 2017, पृ सं. 65

64.कुमार, शरद: फीजी में हिंदी : नये आयाम (आलेख), सुखलाल, गंगाधर सिंह गुलशन (संपा.) विश्व हिंदी पत्रिका, 2010 (पत्रिका), मॉरीशस : विश्व हिंदी सचिवालय, 2010, पृ. सं. 27

65.कँवल, जे. एस. : सवेरा, स्टार पब्लिकेशन प्रा. लि., नई दिल्ली, 1977, पृ. सं. 07

66.वही पृ. सं. 100

67. पॉल, नीना: तेजेंद्र शर्मा-व्यक्ति और संस्था (आलेख), कुमारी, डॉ. कमलेश (संपा.), प्रवासी कथाकार तेजेंद्र शर्मा मुद्दे और चुनौतियाँ, दिल्ली : साहित्य संचय, 2018, पृ. सं. 90

68.सक्सेना, उषा राजे: ब्रिटेन में हिंदी कहानी के 30 वर्ष', पाण्डेय नन्द किशोर (संपा.) प्रवासी जगत (पत्रिका), केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, जुलाई-सितम्बर, 2018 पृ. सं. 83

69.वही पृ. सं. 81

70.सक्सेना, उषा राजे, (संपा): प्रवास में, ज्ञान गंगा, जयपुर (राजस्थान) 2002, पृ सं. 100

71.वही भूमिका से

72.वही फ्लैप से

73.माथुर, दिव्या: आक्रोश, हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली, 2000, प्रथम संस्करण, पृ. सं. 44

74.वही पृ. सं. 45

75.ढींगरा, सुधा ओम: हिंदी कथा साहित्य में अमेरिकी परिवेश (आलेख), गवली, डॉ. कल्पना (संपा), हिंदी प्रवासी कथा साहित्य, (भाग-2), कानपुर : माया प्रकाशन, 2018, पृ. सं. 32

76. बेदी, सुषम: हवन, पेंगुइन प्रकाशक पृ. सं. 129

77.ढींगरा, सुधा ओम: वैश्विक रचनाकार: कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ, भाग-1, शिवना प्रकाशन, भोपाल, पृ. सं. 24

78.ढींगरा, सुधा ओम: कौन-सी ज़मीन अपनी, भावना प्रकाशन, दिल्ली, फ्लैप से

79.ढींगरा, सुधा ओम: कमरा नम्बर 103, हिंदी साहित्य निकेतन, पृ. सं. 20

80.सक्सेना, पुष्पा: वह साँवली लड़की, यात्री प्रकाशन, फ्लैप से

81.मिलिंद, सत्यप्रकाश: हिंदी की महिला साहित्यकार, रूपकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1960, पृ. सं.38

82.जैन, निर्मला, कथा-समय में तीन हमसफ़र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पहला संस्करण, 2015, पृ. सं 86

83.वही पृ. सं.154

84. वही पृ. सं. 94

85.प्रियंवदा, उषा: कितना बड़ा झूठ, राजकमल प्रकाशन, पृ. सं. 97-98

86.वही पृ. सं. 09

87.वही पृ. सं 12

88.वही पृ. सं. 18

चतुर्थ अध्याय

'अन्तर्वंशी' उपन्यास में प्रवासी जीवन का अध्ययन

इस अध्याय में उपन्यास की कथावस्तु के आधार पर प्रवासी भारतीयों के जीवन का सूक्ष्म विश्लेषण किया जायेगा। विदेशी ज़मीन पर बसने वाले प्रवासी भारतीय किस प्रकार जीवन-यापन करते हैं, नए परिवेश में कभी फिट तो कभी मिसफिट होते प्रवासी किस तरह की समस्याओं का सामना करते हैं, उन समस्यायों से कैसे वे निजात पाते हैं। प्रवासी भारतीयों का संघर्ष और मोहभंग, नारी मुक्ति का स्वर, प्रवासी भारतीयों के जीवन में अर्थ का महत्व, अर्थ की तर्ज़ पर संबंधों का बिखराव, अर्थोपार्जन हेतु अवैध प्रवास, मूल्यों का विघटन, पति-पत्नी सम्बन्ध के बदलते दृष्टिकोण, स्थानीय नागरिकता हेतु विवाह को माध्यम बनाना, निर्बाध यौन-जीवन की स्वीकृति आदि बिंदुओं का विस्तार से विश्लेषण करने का प्रयास किया जायेगा।

अनुभव की प्रमाणिकता और गहन संवेदनीयता से युक्त रचनाओं की श्रृंखला में एक और महत्वपूर्ण कड़ी है 'अंतर्वंशी' उपन्यास, जिसका प्रकाशन वर्ष२००० में हुआ। उषा प्रियंवदा का यह उपन्यास उन तमाम भारतीय परिवारों की जीवन-शैली का विश्लेषण करता है जो बेहतर अवसरों की तलाश और आशा में प्रवासी हो जाते हैं। विदेश में बसे युवकों से मध्यवर्गीय परिवारों की कन्याओं का विवाह सौभाग्य समझा जाता है और फिर शुरू होता है संघर्ष और मोहभंग का अटूट सिलसिला। विवाह के पश्चात् बनारस की वनश्री अमेरिका पहुँचकर वाना हो जाती है। वाना अपने आस- पास एक ऐसा समाज देखती है जहाँ सभी लोग "एक होड़ में, एक पागल दौड़ में रत हैं।"[89]

वाना उर्फ़ वनश्री उपन्यास की मुख्य पात्र है, वाना एक अति साधारण परिवार की लड़की है, माँ के अभाव में गरीब पिता व बुआओं के संरक्षण में पली-बढ़ी। दसवीं पास करने से पहले ही उससे बिना पूछे उसकी शादी अमेरिका में पीएचडी कर रहे शिवेश से कर दी जाती है। उपन्यास में वाना का परिचय इन शब्दों में मिलता है, "वह वाना, वह बनारस वाली, साधारण-सी, म्युनिसिपैलिटी के स्कूल में पढ़ी

[89] प्रियंवदा, उषा: 'अंतर्वंशी', वाणी प्रकाशन, पृ. सं. 17

और दारिद्र्य में बड़ी हुई चुनमुन, बुआओं की चुनमुनिया, जिसके पास दूधिया रंग के अतिरिक्त कुछ और नहीं है। किसी ने कहा था बुद्धिहीन सुंदर स्त्री क्या है, अलोनी घुइया।"[90]

वाना विवाह के पश्चात् अपने अति साधारण जीवन से मुक्ति पाती है, लेकिन विवाह के पश्चात् भी उसका जीवन निराशा व असंतोष से भरा है। वह शिवेश के दो बेटों की माँ है तथा अमेरिकी संस्कृति के अनुरूप साड़ी छोड़कर स्कर्ट ब्लाउज पहनती है। वाना के असंतोष का मुख्य कारण अभावग्रस्त जीवन है। शिवेश पीएचडी करने के बरसों बाद भी जूनियर साइंटिस्ट ही बना रहता है, उसे कहीं स्थायी नौकरी नहीं मिलती जबकि उसका मित्र व सहपाठी राहुल कम उम्र में ही पद, प्रतिष्ठा, डॉलर, घर, गाड़ी सब कुछ पा लेता है। शिवेश राहुल पर आश्रित रहता है। इधर वाना अपनी शिक्षा पूरी न कर पाने के कारण पति पर आश्रित रहती है और अपनी क्षमताओं से अनभिज्ञ रहती है। दोनों बच्चों की देखभाल, घर का कामकाज व शिवेश के मित्रों की मेहमान नवाजी और शिवेश की कामपूर्ति में खुद को समर्पित कर देने में ही अपने जीवन की इतिश्री समझती है।

वाना के जीवन में नया मोड़ आता है जब वह शालिनी, सारिका व क्रिस्तीन जैसी चेतना संपन्न स्त्रियों के सम्पर्क में आती है। वाना को अपने आत्म का बोध इन्हीं स्त्रियों की प्रेरणा से होता है। शालिनी व सारिका स्वच्छन्द विचारों वाली भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व करती हैं। शालिनी पीएचडी करने के पश्चात शिकागो के नारी उत्थान संस्थान में बतौर विशेषज्ञ कार्य करती है और उसकी मौसेरी बहन सारिका डॉक्टर है, दोनों आत्मनिर्भर व स्वतंत्र विचारधारा की स्त्रियाँ हैं। उन्हें देखकर वाना को सहज ही आत्महीनता का बोध होता है। शालिनी बातचीत के दौरान अमेरिका में कई सालों से रह रहे भारतीय परिवारों में पुरुष की प्रताड़ना सहने वाली स्त्रियों की चर्चा करती हुई कहती है- "एक तो हमारी औरतें पिटकुट लेंगी, चुप रहेंगी, पति के खिलाफ़ ज़बान नहीं खोलेंगी, और कुछ दिन बाद 'आसरे' से घर लौट जाएँगी। और तो और अब यहाँ बच्चे भी माँ को तिरस्कृत करने लगे हैं।"[91]

---

[90] वही पृ. सं 155

[91] प्रियंवदा, उषा: 'अंतर्वंशी', वाणी प्रकाशन, पृ. सं. 59

शालिनी की बातें सुनकर वाना के भीतर दबा प्रतिरोध प्रकट होने लगता है। वह बच्चों के बड़े होने पर नौकरी करने की बात सोचती है। अंग्रेजी भाषा सीखने का मन बनाती है। सारिका का वाना से मिलना ही उसके जीवन की तयशुदा दिशा में परिवर्तन लाता है। सारिका वाना को स्वयं के बारे में सोचने की और गर्भनिरोधक गोलियों का सेवन करने की सलाह देती है, सारिका वाना से कहती है- "अपने शरीर पर स्त्री का पूरा-पूरा कंट्रोल होना चाहिए। पति? पुरुष जाति ही स्वार्थी होती है। अपना बीज अधिक से अधिक बिखेरना यह पुरुष कि बायोलॉजिकल जरूरत है। जन्मजात स्वाभाव है। प्राकृतिक है। जिससे नस्ल चलती रहे।"[92] सारिका चाहती है कि वाना जो परिवार के लिए अपने जीवन को होम कर चुकी है, अपने बारे में सोचना शुरू करे अपने सपनों का पीछा करे। कुछ स्त्रियाँ स्वयं को सबसे सुंदर वस्तु बनाने की कामना में ही अपने मानवीय कर्त्तव्य की इतिश्री समझ बैठती हैं। वाना भी खुद को केवल अपनी और बच्चों के लिए समर्पित कर चुकी थी। इतने सालों तक उसने केवल पत्नी और माँ की भूमिका ही निभाई। कभी खुद के बारे में सोचा ही नहीं।

शिवेश की भोग्या बनकर रहने वाली वाना जब स्त्री अस्मिता से रू-ब-रू होती है तो वह अपने अस्तित्व के बारे में सोचना शुरू करती है। 'शेष यात्रा' की अनु से एक कदम आगे बढ़कर वाना नारी मुक्ति के उन पक्षों का उद्घाटन करती है जो पश्चिमी संस्कृति व विशुद्ध पाश्चात्य जीवन शैली की देन है। सारिका की तरह वाना को आत्मनिर्भर बनने के लिए प्रेरित करने वाली क्रिस्तीन के साथ वाना समलैंगिक संबंध स्थापित करती है। शिवेश से मिला उदासीन जीवन ढोने वाली वाना के लिए क्रिस्तीन के साथ देहसुख पाना एक नितांत नया अनुभव था। वाना के जीवन में होने वाली तमाम घटनाएँ उसे धीरे-धीरे शिवेश से विमुख करने, उसके प्रति एक तरह का ठण्डापन अख्तियार करते जाने में सहायक होती हैं।

इस उपन्यास के बारे में निर्मला जैन की टिप्पणी महत्वपूर्ण है। उन्होंने लिखा है- "कुल मिलाकर यह उपन्यास संस्कारों में बँधी, सामान्य शिक्षित एक ऐसी मध्यवर्गीय स्त्री की गाथा है जो विवाह सम्बन्ध से प्रवासिनी है। जिसके मन में पति शिवेश के दोस्त राहुल के प्रति आकर्षण विवाह के समय से ही बद्धमूल

[92] वही पृ. सं. 124

और दमित है। शिवेश को वह जाने-अनजाने राहुल की कसौटी पर कस्ती रहती है जिस पर शिवेश कभी पूरा नहीं उतर पाता। भीतर ही भीतर अपनी इच्छाओं का दमन करती वाना के चरित्र की व्याख्या उपन्यास के लगभग अंत में राहुल के माध्यम से लेखिका ने जिस रूप में की है वही उसे समझने की कुंजी है- "वाना आख़िरकार संस्कारी, पुराणपंथी, रीति-रिवाज़ों में बँधी एक हिन्दू स्त्री है। वह शिवेश से बँधी है। वह माँ है। बच्चे उसके चाँद-सूरज हैं और अब तो शिवेश पैसा भी कमाने लगे हैं। राहुल सोचता है, वाना ऐसे ही एक-एक दिन करके पूरी ज़िन्दगी बिता देगी। वह लीक पकड़कर चलती रहेगी। राहुल उससे कैसे कहे-यह सब छोड़कर निकल आओ वाना, मैं तुम्हें इंद्रधनुष के उस छोर तक ले चलूँगा। राहुल और वाना दोनों के मन में एक दूसरे के प्रति आकर्षण था। संकोच के कारण दोनों एक दूसरे से अपनी भावनाओं को छिपाते थे। यह छिपाव भी केवल तब तक, जब तक राहुल देवप्रिया से शादी का निर्णय नहीं कर लेता और शिवेश कमाई के लोभ में ड्रग्स के धंधे में नहीं फँस जाता।"[93]

वाना इसी स्थिति के इंतज़ार में न जाने कब से एकाधिक स्तरों पर जीती रही, न जाने कब से अपने 'अंदर की स्त्री' का दमन करती रही। अपने 'स्व' को अपूर्ण रखने की पीड़ा से, छटपटाहत से गुज़रती रही। आखिर वह साहस बटोर कर शिवेश को अपना निर्णय सुना देती है, ''शिवेश! आई एम लीविंग यू...मैं तुम्हें छोड़ रही हूँ शिवेश।''[94] इस तरह के फैसले लेना प्रवासी अमेरिकी समाज में कोई नई बात नहीं हैं। राहुल के साथ आगामी जीवन को हँसी-खुशी बिता पाने के व्यावहारिक निर्णय की नैतिकता का तर्क केवल यही है कि वाना की पहली पसंद राहुल ही था। यह बात अलग है कि यह प्राप्ति शिवेश की मृत्यु की कीमत पर न होकर यदि उनसे मुक्ति में होती तो प्रभाव ज़्यादा मानवीय होता पर उनके कारुणिक अंत ने इसे अधिक गहन और अधिक मार्मिक भी बनाया है, और मुक्ति के प्रयत्नों की नैतिकता पर सवाला भी उठाया है।

[93] जैन, निर्मला: कथा समय में तीन हमसफ़र, राजकमल प्रकाशन, पृ. सं. 159-160

[94] प्रियंवदा, उषा: अंतर्वंशी', वाणी प्रकाशन, पृ. सं. 241

यहाँ यह कहना भी जरुरी है कि उपन्यास के नारी पात्र पुरुष विरोधी न होकर पुरुष की दमनकारी सत्ता के विरोधी हैं। ये स्त्रियाँ सजग, स्वाभिमानी हैं, रूढ़ संस्कारों से मुक्त। दो संस्कृतियों के बीच जीने वाली सरल, सहज स्त्री जो जीवन को पूर्णता से जीने के प्रयास में आत्मनिर्भर बनती है।

उपन्यास में सुबोध राय का प्रसंग प्रवासी भारतीय युवा-पीढ़ी का एक और रूप उजागर करता है। अनेक भारतीय नौजवानों की तरह, सम्भावनाओं की तलाश में सुबोध राय भी अमेरिका पहुँचता है और अवैध तरीके से वहाँ रहता है। पुरानी गाड़ियों को खरीदने-बेचने का धंधा करते हुए लखपती हो जाता है। अमेरिका की नागरिकता प्राप्त करने के लिए वह सारा नाम की अमेरिकी लड़की से विवाह करता है। कोई नहीं जानता था कि भारत में उसकी ब्याहता पत्नी बैठी है, परिवार भी इस स्थिति से अनजान है। आखिर एक दिन उसकी पत्नी को साथ लिए एक प्रौढ़ सज्जन राहुल के घर अमेरिका पहुँचते हैं, राहुल द्वारा परिचय पूछने पर वे उत्तर देते हैं, 'मैं उसका बाप हूँ और यह उसकी बीवी है।' राहुल के कहने पर कि सुबोध का पता उसकी कंप्यूटर डायरी में है वह विभाग से लौटकर बताएगा। आगे क्या हुआ ? इसका उत्तर उपन्यास नहीं देता। सुबोध राय के प्रसंग द्वारा लेखिका ने सुबोध राय जैसे लोगों की वास्तविकता को उघाड़ा है। गाड़ियों की खरीद-फ़रोख्त तो निमित्त भर है। लेखिका का मुख्य सरोकार अमेरिकावासी तरह-तरह के भारतीय पात्रों और परिवारों की ज़िन्दगी को, उनके आपसी व्यवहार, संबंधों और संघर्षो को गहरी अंतर्दष्टि से उद्घाटित करना है। यहाँ निर्मला जैन का कथन उल्लेखनीय है, वे लिखती हैं- "भारतीय प्रवासियों के जीवन की सबसे बड़ी विडंबना यह रही है कि वे हर स्थिति में वहाँ बने रहना चाहते हैं। वहाँ की ज़िन्दगी का सतही ग्लैमर, डॉलर की कमाई का लोभ उन्हें नागपाश की तरह अपनी गिरफ़्त में ले लेता है।"[95]

आज की वैज्ञानिकता, यांत्रिकता और ठोस बौद्धिकता के कारण मानसिक स्तर से लेकर ठोस भौतिक स्तर तक, सभी प्रकार के मूल्यों में परिवर्तन हो रहा है। एक ओर विज्ञान ने हमें अन्धविश्वासों, परम्परागत रूढ़ियों, अंध श्रद्धाओं की चपेट से बाहर निकाला है, जीवन के यथार्थ से परिचित कराके

[95] जैन, निर्मला: कथा समय में तीन हमसफ़र, राजकमल प्रकाशन, पृ. सं 158

उपकृत किया है तो दूसरी ओर इन्हीं सब कारणों से आज मानुष ह्रदय कठोर, संवेदनहीन, स्वार्थी, आत्मकेंद्रित होता जा रहा है, उसका मन, उसकी संवेदनाएँ कहीं पीछे छूटती जा रही है। स्थूल-भौतिकता, बौद्धिकता ने आज व्यक्ति के अहं को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया है। उस पर वैयक्तिक सुखों की प्राप्ति, महत्वकांक्षाओं की आपूर्ति की एक अबूझ विवशता, औद्योगिकीकरण के कारण बाह्य मूल्यों में बदलाव के परिणामस्वरूप असंतोष की भावना का पनपना, आदि कारणों ने व्यक्ति की चेतना को इस सीमा तक आहत कर दिया कि वह स्वयं से कटकर असाधारणता और अस्वभावकिता के भँवर जाल में उलझता चला जा रहा है। इसी समस्या की अभिव्यक्ति 'अन्तर्वंशी' उपन्यास में हुई है।

1.1 प्रवासी स्त्रियों का जीवन संघर्ष

प्रवासी स्त्री को जीवन में कई स्तरों पर संघर्ष झेलना पड़ता है। दक्षिण एशियाई समाज के विशिष्ट संदर्भ में देखें तो स्त्री का प्रवास, विस्थापन और निर्वासन के रूप में दिखाई पड़ेगा। अधिकांश स्त्रियाँ विवाह के पश्चात् अपने पति के साथ विदेश प्रवास के लिए जाती हैं जहाँ व्यक्तिगत चयन की स्वतंत्रता से अधिक घर बसाने का सामाजिक-सांस्कृतिक दबाव अधिक होता है। यही कारण है कि विदेश में उनका मानस मातृभूमि की नॉस्टैल्जिक यादों के इर्द-गिर्द घूमता रहता है। ऐसी स्त्रियों की संख्या बहुत कम है जिन्होंने अध्ययन-अध्यापन हेतु स्वेच्छा से प्रवास किया है। 'अन्तर्वंशी' उपन्यास में भी हम देख सकते हैं कि वाना, अंजी और बेबी ये तीनों स्त्रियाँ विवाह के पश्चात् अपने जीवनसाथी के साथ अमेरिका प्रवास पर गयीं। इन स्त्रियों ने स्वेच्छा से प्रवास नहीं किया। वहीं शालिनी और सारिका अध्ययन-अध्यापन हेतु स्वेच्छा से प्रवासित हुई। उपन्यास की नायिका बनारस की 'वनश्री' है जो अमेरिका पहुँचकर 'वाना' हो जाती है, एक ऐसे समाज के बीच जहाँ सभी लोग अमेरिका के ग्लैमर में डूबे हुए हैं। एक छोटे से शहर की लड़की जो केवल नवें दर्ज़े तक पढ़ी है, अपने माता-पिता और पति के कारण अमेरिका पहुँच जाती है। अपने चारों ओर लोगों की उपलब्धियाँ देखकर कशमकश में पड़ी वाना जैसे-तैसे अपनी गृहस्थी की गाड़ी खींचती है। पति शिवेश की असमर्थताओं का दमघोंटू एहसास उसे क्रमशः उसके प्रति संवेदनहीन बना देता है,

जिसकी परिणति होती है संबंधों के ठण्डेपन में। अक्सर विदेश में बसे युवकों से मध्यवर्गीय परिवारों की कन्याओं का विवाह सौभाग्य समझा जाता है, ऐसा ही वाना के साथ होता है, अमेरिका में पोस्ट डॉक्टरेट कर रहे शिवेश से वाना का विवाह उसकी बिना रज़ामंदी पूछे करा दिया जाता है। वह विवाह के समय से ही उस सम्बन्ध को केवल ढोती है। वाना अपने दूल्हे के रूप में जिस लड़के को देखती है वह राहुल था, शिवेश का मित्र, उसे क्या पता था उसका विवाह दब्बू, कामचोर और आलसी व्यक्ति शिवेश से हो जाएगा, जो 'सब कुछ ठीक हो जायेगा' जैसी उक्ति पर विश्वास करता है। विवाह के पश्चात जब वाना को पता चलता है कि उसका विवाह शिवेश से हुआ है तो उसके पैरों तले ज़मीन खिसक जाती है और यहीं से शुरू होता है वाना की ज़िन्दगी में संघर्ष और शिवेश के प्रति मोहभंग का सिलसिला जो धीरे-धीरे बढ़ता ही जाता है।

अपने प्रवास के शुरूआती दिनों में वाना भौतिकतावादी समाज में कभी फिट तो कभी मिसफिट होती, जैसे-तैसे अपना जीवन व्यतीत करती है। आदिम प्रकृति के अनजाने प्रवाह में खिंचकर वह अपने पति शिवेश के बच्चों की माँ बनती है; वात्सलमयी माँ बनकर सुखी भी रहती है। एक सदगृहणी की भाँति अपने परिवार का ध्यान रखना अपना कर्तव्य समझती है किन्तु उसके जीवन में जो अभाव है वह उसके मन को बेचैन करता है। केवल पति और बच्चों के प्रति समर्पित स्त्री के रूप में रहना आसान नहीं होता। 'स्त्री का सारतत्व' में प्रभा खेतान ने लिखा है- "विचारों की दुनिया में पुरुष की स्थापना व्यक्ति के रूप में हुई है और स्त्री की वस्तु के रूप में। इसी कारण स्त्री अपने संदर्भ के बदले पुरुष के संदर्भ में परिभाषित होती रहती है। स्त्री का होना महज आकस्मिक घटना की तरह मान लिया गया है। पुरुष व्यक्ति के रूप में सम्पूर्ण है। स्त्री तो बस अन्या है।"[96] ऐसा ही वाना के साथ भी होता है। उसके भीतर कई सवाल उठते हैं वह खुद से प्रश्न करती है, "कौन हूँ मैं ? क्या पत्नी और माँ के परे भी कोई पहचान होती है?"[97] उसे लगता है कि "कपड़ों की धुलाई-झाड़ू, बिस्तर लगाना, दाल-चावल बनाना। यही है चुनमुन पाण्डेय, वनश्री मिशिर

---

[96] खेतान, प्रभा: उपनिवेश में स्त्री, राजकमल प्रकाशन, 2016

[97] प्रियंवदा, उषा: अंतर्वंशी', वाणी प्रकाशन, पृ. सं. 143

की पहचान। उसका अस्तित्व।''[98] वाना के जीवन में बदलाव आता है जब वह शालिनी और सारिका से मिलती है। शालिनी सारिका की मौसेरी बहन है जो पीएचडी करने के बाद शिकागो में नौकरी करती है और 'आसरा' नामक शाखा में बतौर विशेषज्ञ कार्य करती है। सारिका पेशे से डॉक्टर और खुले विचारों वाली स्त्री है। शालिनी और सारिका वाना को स्त्री अस्मिता और स्त्री अस्तित्व जैसे विचारों से अवगत कराती हैं। सारिका ही उसे एहसास दिलाती है कि रसोई के आगे भी एक दुनिया है जो उसका बाहें फैलाकर स्वागत करने के लिए तत्पर है। वह वाना को उसके सपनों को सच्चाई में बदलने के लिए प्रेरित करती है। सारिका के समझाने के बाद से वाना में बदलाव आता है। केवल सारिका ही नहीं क्रिस्तीन भी वाना को समझती है, उसका साथ देती है, उसके बुरे दिनों से उबारने में उसकी मदद करती है, वह वाना से कहती है- "अपने दायरे में रहने की, ज़िन्दगी से हर समझौता करते चलने में एक सुरक्षा है। लीक पकड़कर चलने में समाज की कृपादृष्टि है। एक बार यदि स्थल पर निकल आई तो कदम-कदम पर खतरे हैं, कहीं किसी के पैर से कुचल जाने का अंदेशा, या साँप द्वारा निगल जाना। यह विकल्प हमारे हाथ में हैं वाना।"[99] वह वाना से उसकी पहचान स्वयं खोजने को कहती है, "तुम्हें अपनी पहचान स्वयं खोजनी होगी। जब समय आएगा तो तुम स्वयं अपनी दिशा पहचान लोगी। जैसे पानी हमेशा ढाल की तरफ़ बहता है और अपना स्तर पाकर ही स्थिर होता है।"[100] वाना क्रिस्तीन की बात पर विचार करती है और तय करती है कि अब वह अपनी खुशियों से समझौता नहीं करेगी। वह अपने विचारों के तार पकड़ने में खोयी हुई है, "मैं कब से एकाधिक स्तरों पर जीती आयी हूँ, पत्नी, माँ-जो मेरी शिक्षा रही; पर अंदर की स्त्री, जो हमेशा इस शांत मुखाकृति के भीतर रेस्टलेस, खोज में व्यस्त, इधर-उधर भटकती रही, जहाँ भी जो कुछ मिला, उसी को कंगाल की तरह सँजोती रही, अब यह बेईमानी नहीं चल पाएगी अंजी! मैं कब तक अपने को ठगती रहूँगी-कब तक अपने 'स्व' को अपूर्ण रखूँगी।"[101] वह खुद के लिए सोचना शुरू करती है, अंग्रेजी सीखती

---

[98] वही पृ सं. 144

[99] प्रियंवदा, उषा: अंतर्वंशी', वाणी प्रकाशन, पृ. सं. 107-108

[100] वही पृ. 110

[101] वही पृ. 237

है, सेक्रेटरी का कोर्स करती है, गाड़ी चलाना सीखती है, अमेरिकी परिवेश के अनुरूप कपड़े पहनती है, मकान बेचने वाली एजेंसी में काम करती है। शिवेश की नौकरी छूटने के बाद घर की पूरी जिम्मेदारी जैसे-तैसे सँभालती है। वाना भी और स्त्रियों की भाँति अपने पति पर निर्भर न रहकर आत्मनिर्भर स्त्री बनने की ओर उन्मुख होती है। स्त्री चेतना और अस्तित्व-बोध के कारण ही वह अब तक ढोते आए शिवेश के साथ वैवाहिक सम्बन्ध को तोड़ने और राहुल के साथ आगे बढ़ने का निर्णय लेती है।

वाना, शालिनी, सारिका, क्रिस्तीन, के अलावा अंजुमन उर्फ़ अंजी भी स्त्री पात्र है। वह भी विवाह के पश्चात अपने पति असलम के साथ बड़े-बड़े सपनों के साथ अमेरिका प्रवास पर आती है। कुछ दिन साथ रहने के बाद असलम अस्पताल में किसी नर्स से प्रेम करने लगते हैं और अंजी को उसके बच्चों के साथ अकेला छोड़ देते हैं। अंजी अपने आप को उन परिस्थितियों में रहने के काबिल बनाती है। वह भी अंग्रेजी सीखती है और सिलाई-कढ़ाई का काम करके अपना जीवन जीती है।

अनुभव की प्रमाणिकता और गहन संवेदनीयता से युक्त उषा प्रियंवदा का यह उपन्यास प्रवासी जीवन को उघाड़ कर रखने में पूर्णतया सक्षम है। परिस्थितियों से हार न मानते हुए, एकाधिक स्तरों पर जीते हुए वाना और अंजी दोनों ही प्रवासी स्त्रियों ने अपने 'स्व' को पहचानकर अपने व्यक्तित्व को निखारकार, अमेरिका जैसे देश में अपने बल पर अपनी पहचान बनाई और अपने अनुसार अपने जीवन की दिशा को गति दी।

1.2 प्रवासी जीवन में संघर्ष और मोहभंग की स्थिति

अपनी ज़मीन छोड़कर जब व्यक्ति अपनी महत्वकांक्षाओं और लालसाओं की पूर्ति के लिए प्रवास करता है तो उसे नए परिवेश और नयी ज़मीन पर खुद को स्थापित करने के लिए संघर्ष करना पड़ता है और इस संघर्ष के दौरान जो व्यक्ति हार मान लेता है, उसका उस नए परिवेश और उस समाज से मोहभंग हो जाता है। 'अन्तर्वंशी' उपन्यास में प्रवासी जीवन, संघर्ष और मोहभंग की दास्तान के रूप में दिखाई पड़ता है। कोई भी व्यक्ति जब अपना देश छोड़कर विदेशी धरा पर पहुँचता है तो उसे कई तरह की

समस्याओं का सामना करना पड़ता है। पूर्णतया भिन्न संस्कृति और नये परिवेश में पहुँचकर व्यक्ति खुद को अकेला और उस समाज से कटा हुआ महसूस करता है। प्रवास की विडंबना पर सलमान रशदी ने लिखा है- "I, too, have ropes around my neck. I have them to this day, pulling me this way and that, East and West, the nooses tightening, commanding, choose, choose. I buck, I snort, I whinny, I rear, I kick. Ropes, I do not choose between you."[102] अर्थात् प्रवासी व्यक्ति के समक्ष पूर्व और पश्चिमी जगत् के चयन की, उसे आत्मसात करने की विडम्बनात्मक परिस्थितियाँ बन जाती हैं। वह उसी में उलझकर रह जाता है। इस उपन्यास में उषा प्रियंवदा ने उन तमाम भारतीय परिवारों की ज़िन्दगी का बारीकी से विश्लेषण किया है जो बेहतर अवसरों की तलाश और आशा में प्रवासी हो जाते हैं। विवाह के पश्चात् प्रवासित हुई ऐसी ही करुण दास्तान वाना और अंजी की हैं जो ऐसे समाज में पहुँच जाते हैं जहाँ सभी लोग डॉलर की कमाई के लोभ में सतही जीवन के ग्लैमर में डूबे हुए हैं। जहाँ हर कोई अपनी उपलब्धियों पर इतराता है, सफलता का शिखर चूमना चाहता है, एक दूसरे से आगे निकलना चाहता है। ऐसे देश में एक छोटे शहर से आयी लड़की अपनी कमजोरियों को लेकर चिंतित रहती है। अपने पति की गैर-जिम्मेदाराना रवैये के कारण उसे अपनी खुशियों का गला घोंटना पड़ता है किन्तु उसका मन समझौता करने को तैयार नहीं होता। उसे भी बड़ा घर, बड़ी गाड़ी, हाथ भर सोने की चूड़ियाँ, चमकते हीरे की अँगूठी पहनने का मन करता है। अपने दोस्तों से प्रभावित होकर वह भी अपने सपनों को पूरा करने के लिए परिश्रम करती है। शिवेश वाना की खुशियों को पूरा करने के लिए ग़लत लोगों के समूह से जुड़ जाते हैं और कोकीन के धंधे में सहयोग करते हैं। पुलिस द्वारा पता चलने पर अपने परिवार को छोड़कर भाग जाते हैं।

उपन्यास में वाना के साथ-साथ एक दुनिया और भी है जिसमें अंजी है, राहुल है, सुबोध है। सब एक दूसरे से भिन्न, अपने-अपने रास्तों को तलाशते हुए। सभी राहुल की तरह सफलता की सीढ़ी नहीं चढ़ पाते और न ही शिवेश की तरह कारुणिक अंत को प्राप्त होते हैं। अंजी बाँगला देशी है। उसका

102 Rushdie, Salman: East West, Vintage Publication

अमेरिका स्थित डॉक्टर पति किसी नर्स के प्रेम में पड़कर उसे तलाक दे देता है और अनजाने शहर में अकेला छोड़कर दूसरी स्त्री के साथ आगे बढ़ जाता है। अंजी अकेले ही काम करके अपनी गुज़र बसर करती है और अपने दोनों बच्चों की देखभाल करती है। अमेरिका जैसे देश में किसी एक व्यक्ति की छोटी-सी आमदनी से घर नहीं चल सकता। अंजी के बच्चे भी घर चलाने में और अपनी माँ का बोझ कम करने और अपनी पढ़ाई का खर्च निकालने के लिए अख़बार बाँटने का काम करते हैं। अंजी भी सिलाई-कढ़ाई के काम से थककर वाना के साथ मिलकर राहुल के घर में 'डे-केयर' सेंटर खोलती है और इस प्रकार छोटे-छोटे काम करके अपना जीवन निर्वाह करती है। सारिका के साथ भी स्थितियाँ ठीक नहीं रहतीं। उसका मजबूत पक्ष यह था कि वह पढ़ी-लिखी स्त्री थी, पेशे से डॉक्टर थी। लेकिन अपने मंगेतर से धोखा पाकर वह टूट-सी जाती है। सारिका सोचती है अगर वह अमेरिका न आयी होती तो शायद उसका मंगेतर किसी और से विवाह न करता। इसलिए वह अपने माता-पिता के पास भारत लौटने का निर्णय करती है लेकिन नियति को कुछ और ही मंज़ूर था। सारिका वाना के साथ अपनी किताबें पोस्ट करने के लिए डाकघर जाती है। वहाँ डाकघर में एक पागल कर्मचारी कुछ लोगों पर बेवजह गोलियाँ चलाता है जिसमें दो से तीन लोग मारे जाते हैं। सारिका भी उसकी गोली का शिकार हो जाती है, और उसका जीवन समाप्त हो जाता है।

विदेश में रहकर पढ़ना भी कम चुनौतीपूर्ण कार्य नहीं होता। यहाँ पढ़ रहे सभी लोग पढ़ने के साथ-साथ नौकरी भी करते हैं। सुबह नौकरी और शाम को पढ़ाई। इन विद्यार्थियों को रहने खाने की समस्याओं का सामना करना पड़ता है, उपन्यास में उक्त समस्या के बारे में लेखिका ने लिखा है- "बोस्टन रहते हुए छात्रावस्था में राहुल को पूरी अवधि कोई न कोई स्कॉलरशिप मिलती रही। कभी-कभी तो सिर्फ़ उसी के पास नियमित रूप से पैसे आते थे। उसके फ्लैट में एक पुराना और आरामदायक सोफ़ा था; न जाने क्यों हमेशा कोई न कोई बेघर बे-पैसे वाला विद्यार्थी उस पर सोता रहता था। पहले-पहल पैसे खत्म हो जाने पर शिवेश आये थे। उन्होंने एक सुघड़ गृहणी की तरह राहुल का घर सँभाल लिया था…शिवेश को कभी दो जनों लायक खाना बनाना नहीं आया, हमेशा ही पूरा पतीला भरकर पकता था, और हमेशा तीन-चार

इच्छुक खाने के समय आ जाते। उनमें कुछ परदेस में अकेलापन दूर करने के लिए आते थे। कुछ यदि न आते तो भूखे रहते।"[103]

अमेरिका में प्रवासी भारतीय संघर्ष करते लेकिन फिर भी कोई वापस नहीं लौटना चाहता। वाना कहती भी है, "पढ़े-लिखे लोग, एम.ए, पीएचडी, डॉक्टर टैक्सी चलाते हैं। बैंकर अफ़सर लोग सड़क पर फल बेचते हैं। भले घरों की पर्दानशीन औरतें वेट्रेसों का काम करती हैं। कोई नहीं जाता, झूठे सच्चे कारण ये सभी रहना चाहते हैं।"[104]

लेखिका ने विदेशी माहौल में बच्चों को ठीक परवरिश न मिलने के कारण उनके बिगड़े हुए व्यवहार की तरफ़ भी पाठकों का ध्यान खींचा है। शालिनी वाना से कहती है हम जैसे प्रवासियों के बच्चे यहाँ आकर यहाँ के रंग में इस कदर रंग चुके हैं कि अपने देश के बारे में गैरों- सी बातें करते हैं। वहाँ के रीति-रिवाज़ो का मज़ाक बनाते हैं और तो और अगर ज़रा-सा माता-पिता डाँट दें तो तुरंत पुलिस से शिकायत करने की धमकी देने लगते हैं। शालिनी वाना को एक प्रवासी भारतीय परिवार के बच्चे का उदहारण देती है जो अपनी माँ से कहता है, "हाँ, कि तुम काली हो, गंदी हो, तुम इन रंग बिरंगे देवताओं को पूजती हो। हम नहीं उतारेंगे जूते, कोई अमेरिकन जूते उतारकर घर में रहता है ? हम नहीं खाएँगे यह पीले रंग की दाल, हमें चाहिए, पिज़्ज़ा, हैम बर्गर, हॉटडॉग।"[105] वाना के बच्चे आकाश और विकास भी आगे चलकर इसी तरह बर्ताव करते हैं। अपनी माँ का अनादर करते हैं।

यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि प्रवासी भारतीयों की पहली पीढ़ी दो संस्कृतियों के बीच स्वयं को घिरा हुआ महसूस करती है। वे ना तो पूरी तरह भारतीय रह पाते हैं और न ही पूरी तरह उस देश की संस्कृति को आत्मसात कर पाते हैं, जहाँ वे रहते हैं। उन्होंने बेशक अपना मूल देश छोड़ दिया हो लेकिन उस देश के संस्कार और संस्कृति उनके मन में कहीं भीतर तक बनी रहते हैं। वही दूसरी पीढ़ी के लोगों में यह भाव नहीं होता। वे अपनी संस्कृति के प्रति पूर्णतया विमुख होते हैं और अपनायी हुई संस्कृति के प्रति

---

[103] प्रियंवदा, उषा: अंतर्वंशी', वाणी प्रकाशन, पृ. सं. 30

[104] वही पृ. सं 79

[105] वही पृ. सं 59

उन्मुख। इस संदर्भ में इवा पताकी का कथन उल्लेखनीय है- "Assimilation is an integrative process within the family and between generations, and is not socially and culturally equable, thus resulting in hybridity and the confusion of cultural identity. The assimilation of the first generation is never complete, they are in between state where they have already left their culture behind but have not integrated the new culture yet. On the other hand, the second generation tends to aim at total assimilation, by breaking away from the roots and traditions."[106] यहाँ शिवेश और वाना पहली संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं तो उनके बच्चे आकाश और विकास दूसरी संस्कृति का।

अपनी ज़मीन छोड़कर महत्वकांक्षाओं और लालसाओं की पूर्ति हेतु जब व्यक्ति प्रवास करता है तो उसे नये परिवेश और नयी ज़मीन पर स्वयं को स्थापित करने के लिए संघर्ष करना पड़ता है और कई बार यह संघर्ष जब असफल होता है तो व्यक्ति के मन में मोहभंग जैसी स्थितियाँ बन जाती हैं। उषा प्रियंवदा अमेरिकावासी इन पात्रों और उनकी ज़िन्दगी को गहरी अंतर्दष्टि से उद्घाटित करती हैं।

1.3 पाश्चात्य संस्कृति व मूल्यों का प्रभाव

किसी भी देश की संस्कृति वहाँ के निवासियों की सामाजिक, मानसिक प्रवृत्तियों का प्रतिबिम्ब होती है और उसका सही परिप्रेक्ष्य में परिचय देती है। भारतीयों ने पश्चिमी देश के रहन-सहन आचार-विचार के साथ-साथ उनकी संस्कृति को भी अपनाना शुरू कर दिया। लोगों की आस्था पुराने मूल्यों से उठने लगी। इस संदर्भ में डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का कथन है, "नवीन मूल्यों की स्थापना से व्यक्ति-व्यक्ति परस्पर सम्बन्ध में, व्यक्ति के अपने चारों ओर के समाज और वातावरण में भी परिवर्तन होना अवश्यम्भावी हो जाता है। यही कारण है कि आज की वैज्ञानिक तकनीकी प्रगति, पूँजीवादी अर्थव्यवस्था, जीवन के मशीनीकरण, अत्यधिक औद्योगीकरण के फलस्वरूप नगरीकरण और नगरों की अपार भीड़-भाड़ आदि

[106] 19. Pataki, Eva: Caught between two worlds : The confusion of cultural Identity in Three British Asian Novels, University of Debrecen, 2015, page no. 345

के कारण पुराने मूल्य नकारे जा रहे हैं।"[107] मनुष्य पुराने मूल्यों को नकारता हुआ नये मूल्यों की खोज में सक्रिय होने लगा जिसके परिणामस्वरुप व्यक्ति के व्यक्तित्व का विघटन हुआ, और वह अकेलेपन, कुंठा और घुटन का शिकार होने लगा। पाश्चात्य मूल्यों को अपनाना गलत नहीं है लेकिन अपनी पहचान भुलाकर केवल अंधानुकरण भी ठीक नहीं है।

विदेशों में बसी नवीन पीढ़ी स्थानीय सभ्यता एवं संस्कृति के अधिक निकट रहती है। उनके जीवन व्यवहार पर स्थानीय संस्कृति और जीवन-मूल्यों का प्रभाव पड़ना अत्यंत स्वाभाविक है। नवीन पीढ़ी भारतीय जीवन-मूल्यों के प्रति अनास्था व्यक्त करती है तो वहीं उनमें पाश्चात्य जीवन-मूल्यों के प्रति आग्रह स्पष्टतः दिखाई देता है। प्रवासी व्यक्ति की इस स्थिति के बारे में प्रवासी साहित्यकार सुषम बेदी लिखती हैं- "जिस ज़मीन पर आप रह रहे होते हैं उसके संस्कार, संस्कृति भी अपने आप आपके भीतर कहीं प्रवेश कर रहे होते हैं, आपके जाने बिना। इसका पता तो सालों बाद चलता है, जब आप खुद या दूसरे उन प्रभावों या बदलावों की ओर ध्यान दिलाते हैं। ऊपरी तौर पर आप चाहे नई ज़मीन के प्रति एक विद्रोही का भाव ही रखें पर यह प्रभाव अवश्यम्भावी होता है।"[108] विदेशों में पली-बढ़ी नई पीढ़ी कुछ सीमा तक पाश्चात्य संस्कृति व जीवन-मूल्यों से प्रभावित दिखाई पड़ती है। विवाह के बाद वनश्री जब अपनी पहले की तस्वीर देखती है "माँग में सिन्दूर, माथे तक खिंचा हुआ, बड़ी-सी बिंदिया, छोटे बालों को वश में लाने के लिए ढेर-सी चिमटियाँ। वह अचम्भे से उस तस्वीर को देखती रह जाती है।"[109] पाश्चात्य संस्कृति को आत्मसात करती वाना का बदला हुआ रूप देखकर राहुल को झटका लगता है, "उसकी स्कर्ट ऊँची है-बीच जाँघों तक। कसा हुआ सफ़ेद स्वेटर, सफ़ेद प्लास्टिक के बुन्दे, पलकों पर रंग, होंठों, गालों सभी पर लाली। सबसे ज़्यादा बदला है वाना का चेहरा, कसाकसा है, भावहीन, अपने में संपुटित, खोई-खोई ऑखें, बनावटी मुस्कान, जिसमें होंठ हिलकर रह जाते हैं, मुद्रा में कोई अंतर नहीं आता।"[110] वाना के

[107] वार्ष्णेय, डॉ. लक्ष्मीसागर: द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. सं. 81

[108] बेदी, सुषम: प्रवासी लेखिका की दोहरी भूमिका और जिम्मेदारियाँ (आलेख), पाण्डेय, प्रो. नन्द किशोर (प्रधान संपा), प्रवासी जगत (पत्रिका), पृ. सं. 01

[109] प्रियंवदा, उषा: अंतरवंशी, वाणी प्रकाशन, पृ. सं. 15

[110] वही पृ. 136

व्यक्तित्व में आया हुआ परिवर्तन पाश्चात्य संस्कृति की ही देन है। यह परिवर्तन उसके लिए कुछ हद तक सकारात्मक है। इस परिवर्तन का नकारात्मक पक्ष है लोगों को देखकर अपनी आकांक्षाओं का बढ़ाना और अधिक पाने की चाह, संतुष्ट न होना..।

इतना ही नहीं, परिवार की सबसे लघुतम इकाई पति-पत्नी का संबंध भी बदलता जा रहा है। वे भी एक दूसरे के साथ एडजस्ट न हो पाने की स्थिति में अजनबी बनते जा रहे हैं। मानवीय संबंधों के टूटने के कारण व्यक्ति स्वकेंद्रित होता जा रहा है। इस संदर्भ में देवीशंकर अवस्थी का कथन है- "आज आदमी के सामने सबसे बड़ा व्यंग्य यह है कि न तो वह किसी का बन सका है और न किसी को अपना बना सका है। व्यक्ति संबंधों का विघटन एक बहुत बड़े पैमाने पर हुआ है। साथ ही उसके मन में एक विचित्र प्रकार का भय समाया हुआ है।"[111] उपन्यास में वाना और शिवेश का संबंध भी ऐसा ही है जो अब टूटा.. अब टूटा.. वाली स्थिति से गुज़रता है।

पाश्चात्य संस्कृति का नकारात्मक प्रभाव वाना के बच्चों पर दिखाई पड़ता है। वाना द्वारा अपने छोटे बेटे विकास को दाल-चावल खाने के लिए कहने पर, वह अपनी माँ के सामने तनकर खड़ा हो जाता है और कहता है "मैं क्यों भूखा रहूँ ? यह कोई भारत है ? यह अमेरिका है, अमेरिका… वाना का गुस्सा बढ़ गया; उसने हाथ उठाया ही था कि विकास उछलकर फ़ोन की तरफ़ बढ़ गया"[112] और अपनी माँ को धमकाते हुए कहता है, "मैं अभी पुलिस को फ़ोन करता हूँ कि मेरी माँ मुझे मार पीट रही है।"[113] अपने देश को लेकर विकास के मन में इस तरह की धारणा और अपनी माँ का तिरस्कार करना, यह पाश्चात्य समाज की ही देन है। भारत में स्थिति अभी इतनी भयावह नहीं है।

अतः लेखिका ने विभिन्न पात्रों के माध्यम से पाश्चात्य संस्कृति व मूल्यों का सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही प्रभावों का चित्रण किया है। वाना द्वारा अपने 'स्व' को पा लेना, अंजी का आत्मनिर्भर

---

[111] अवस्थी, देवी शंकर: नयी कहानी : संदर्भ और प्रकृति, राजकमल प्रकाशन, पृ. 113

[112] प्रियंवदा, उषा: 'अन्तर्वंशी', वाणी प्रकाशन, पृ. सं. 169

[113] वही पृ. 169

बनना, सकारात्मक प्रभाव कहे जायेंगे तो वहीं संबंधों में आयी कटुता, अस्थायी सम्बन्ध, दाम्पत्य संबंधों में बढ़ती शून्यता, रिक्तता, आदि नकारात्मक प्रभाव कहे जायेंगे।

1.4 अकेलापन और अजनबीपन का एहसास

अकेलेपन का सम्बन्ध मानवीय मन की उस स्थिति से है, जिसमें व्यक्ति विशेष अपने समाज व परिवेश से कटकर अजनबीपन का अनुभव करता है। अकेलेपन के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए डॉ. इन्द्रनाथ मदान लिखते हैं- "अकेलेपन का बोध भी बहुत पुराना है, मध्यकालीन है, शायद इससे भी पहले का है। उपनिषदों में भी इसे आँका जा सकता है। आज का अकेलापन मध्यकालीन या रोमांटिक अकेलेपन से भिन्न कोटि का है। मध्यकालीन युग में यह आत्मिक स्तर पर है, रोमांटिक युग में वैयक्तिक स्तर पर और आधुनिक युग में स्थिति-नियति के स्तर पर है।"[114]

प्रवासी भारतीय विदेशों में अकेलेपन से भरी ज़िन्दगी व्यतीत करते हुए दिखाई पड़ते हैं। 'अन्तर्वंशी' उपन्यास में भी यह अकेलापन विभिन्न पात्रों में दिखाई पड़ता है। भारत से अमेरिका पहुँचने के बाद राहुल अपनी पूर्व प्रेमिका को याद करता है। रत्ना की मृत्यु के पश्चात् वह घरवालों के बीच रहकर भी स्वयं को अजनबी महसूस करता है और धीरे-धीरे अकेले रहने का आदी हो जाता है। वाना भी अपने पति और बच्चों के साथ रहते हुए भी खुद को अकेला महसूस करती है। वह अपने अकेलेपन की पीड़ा के बारे में क्रिस्तीन से कहती है- "मैं एकदम अकेली हूँ...मत कहो क्रिस्तीन, कि मेरे पास सब कुछ है, पति, बच्चे -एक बिंदु पर आकर इंसान अपने को एकदम अकेला पाता है और सब कुछ होने के बाद भी मेरे अंदर इतना रीतापन क्यों है ? मैं नहीं जानती, सिर्फ़ इतना जानती हूँ कि मैं इंच-इंच कर मर रही हूँ।"[115] शिवेश, सारिका और अंजी भी इस अकेलेपन की पीड़ा से पीड़ित दिखाई पड़ते हैं। सारिका की मृत्यु के पश्चात् वाना के दिमाग़ पर बुरा असर पड़ने के कारण, वाना द्वारा शिवेश की उपेक्षा करना, शिवेश पर

---

[114] मदान,डॉ. इंद्रनाथ: आधुनिकता और हिंदी साहित्य, राजकमल प्रकाशन, पृ. स. 74

[115] प्रियंवदा, उषा: 'अन्तर्वंशी', वाणी प्रकाशन, पृ. सं 100

चिल्लाना, बच्चों को डाँटना। इन सबसे शिवेश के मन को काफ़ी चोट पहुँचती है। वह वाना के बर्ताव से स्वयं को अजनबी और अकेला महसूस करते हैं। अपने मंगेतर द्वारा रिश्ता तोड़ने के बाद सारिका भी टूट-सी जाती है और खुद को ठगा हुआ महसूस करती है। अंजी के साथ भी ऐसा ही होता है। असलम अंजी को तलाक देकर चले जाते हैं और अंजी एक नये शहर में अपनों से कोसों दूर खुद को अकेला पाती है। अकेलेपन की यह त्रासदी प्रवासी भारतीयों की नियति बनकर उनके जीवन से जुड़ जाती है। इस अकेलेपन से उबरने के लिए उपन्यास के सभी पात्र छटपटाते हुए दिखाई पड़ते हैं।

अतः लेखिका ने उपन्यास में अकेलेपन का दंश झेलते हुए विभिन्न पात्रों का चित्रण किया है। स्थानीय जीवन-शैली व प्रवासी जीवन को प्रभावित करने वाले कारक अकेलेपन की स्थिति को बनाने व उसमें कई गुणा वृद्धि करने में अपनी भूमिका निभाते हैं।

1.5 दाम्पत्य संबंधों के बदलते आयाम

जीवन के नए परिवर्तनशील मूल्यों ने पुराने व्यक्ति-संबंधों या पारिवारिक मान्यताओं, व्यवस्थाओं को पूरी तरह अस्त-व्यस्त कर दिया। इतना ही नहीं जीवन को अनेक प्रकार के प्रतिरोधों से भर दिया है। आज का जीवन सामूहिकता की परंपरागत परिस्थितियों से पिछड़कर व्यक्ति और उसके अहं पर आकर केंद्रित होकर रह गया है। व्यक्ति केंद्रित होने की भावना, व्यक्तिगत संक्रमण और वैयक्तिक संक्रांति की यह प्रक्रिया व्यवहार जगत् में कुछ इतनी तीव्र गति से परिवर्तन चक्र को परिचालित कर रही है कि आज पति और पत्नी परस्पर सहयोगी, सहकारी न रहकर दो अलग केंद्र, दो अलग छोर - उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव बनकर रह गए हैं। परिणामतः दाम्पत्य संबंध आज बिखरते चले जा रहे हैं।

उषा प्रियंवदा ने प्रवास के बाद के कथा-साहित्य में दाम्पत्य संबंधों के बदलते आयामों का यथार्थ चित्रण किया है। उन्होंने प्रवासी भारतीय परिवारों के जीवन का खोखलापन, वैवाहिक संबंधों में पनपता अजनबीपन, संबंधों में एकरसता तथा अलगाव और लम्बी उदासीनता को यथार्थ जगत् से ग्रहण किया

है। यह भी सत्य है कि उषा प्रियंवदा ज़ोर जबरदस्ती वाले दाम्पत्य संबंधों को जबरन आगे बढ़ाने की कोशिश नहीं करतीं। ऐसे संबंधों पर पूर्ण विराम लगाना ही उन्हें उचित लगता है।

'अन्तर्वंशी' उपन्यास में भी उन्होंने दाम्पत्य सम्बन्ध के बदलते आयामों का चित्रण किया है। यहाँ वाना और शिवेश एक साथ रहकर भी सतही रिश्ते के कारण केवल दाम्पत्य सम्बन्ध को निभाने के लिए बाधित दिखाई पड़ते हैं। शिवेश की कामचोरी और आलस्य और वाना की बढ़ती महत्त्वकांक्षाओं के कारण उन दोनों के बीच ठण्डापन पनपने लगता है। दाम्पत्य सम्बन्ध मुख्य रूप से पति-पत्नी की समझदारी, एडजस्टमेंट की भावना तथा कई बार पारिवारिक स्थितियों पर निर्भर करता है किन्तु बदलते समय में पति- पत्नी दो विभिन्न इकाइयाँ बनकर आत्मकेंद्रित होते हुए एक-दूसरे को कुंठित करते हैं। फलस्वरूप संबंधों में घुटन और तनाव बढ़ने लगता है। वाना और शिवेश का सम्बन्ध भी तनावग्रस्त है। वाना अपने दुःख को क्रिस्तीन से साझा करती है, "नहीं क्रिस! यह प्रश्न ही नहीं उठता। शिवेश मुझसे कुछ अपेक्षा ही नहीं करते... हमारे शास्त्रों में पत्नी केवल संतान का निमित्त है।"[116] तो वहीं शिवेश भी खुद को अकेला महसूस करने लगे हैं। वाना के इस कथन के पीछे उसकी बेबसी साफ झलक रही है। आर्थिक विफलता उनके परिवार को घेरे हुए है। नई नौकरी मिलने के बाद शिवेश को उम्मीद है कि सब ठीक हो जायेगा - "अब जब सब कुछ ठीक चल रहा है, नया फ्लैट, नया फर्नीचर, पूरे समय की नौकरी; उसे प्रसन्न होना चाहिए- यही तो चाहती थी वाना; औरों के घर जा-जाकर उसने यही देखा था; ठीक है; धीरे-धीरे अपना घर भी खरीद लेंगे, ऊपर से नीचे तक सोने-चाँदी से मढ़ देंगें।"[117] चार दिन की चाँदनी फिर अँधेरी रात वाली कहावत का प्रयोग यहाँ सार्थक जान पड़ता है। यह कुछ ही दिन चलता है फिर शिवेश की नौकरी छूट जाती है। पति की अनिश्चित नौकरी और तज्जनित अनेक प्रकार के अभावों में जीती हुई वाना इस अभाव से उबरने के लिए नौकरी करने का निर्णय करती है। अमेरिका जैसे देश में वाना की छोटी-सी आय में घर खर्च चलाना मुश्किल होता जा रहा था, वह परिस्थितियों से तंग आकर राहुल से कहती है,

---

[116] प्रियंवदा, उषा: 'अन्तर्वंशी', वाणी प्रकाशन, पृ. सं 105

[117] प्रियंवदा, उषा: 'अन्तर्वंशी', वाणी प्रकाशन, पृ. सं 114

"सच कहूँ, मुझे शिवेश पर विश्वास नहीं है। मुझे लगता है कि जैसे सारा बोझ मेरे ही कंधों पर आ पड़ा है।"[118] शिवेश के कारण वाना का इच्छा संसार अपूर्ण रह जाता है। बिस्तर पर भी शिवेश वाना को असह्य लगने लगते हैं। वह मन ही मन सोचती है, "वह स्त्री है, पत्नी है; अब तक बिना शिकायत उनकी ज़िद, उनके आग्रह के सामने झुकती आई है। पर अब नहीं। उसे शिवेश के बदन की महक से वितृष्णा हो गयी है। अब वह उन्हें नहीं झेल पाएगी।"[119] सत्य तो यह है कि वाना का शिवेश से मन ही नहीं मिला कभी। वाना ने अपने विवाह के समय से ही शिवेश को केवल बर्दाश्त किया है। वह क्रिस्तीन से कहती भी है, "यह बहुत बड़ी बेईमानी, बहुत बड़ा विश्वासघात है, पर शिवेश को पहले दिन से ही पति रूप में ग्रहण करना मेरे लिए यातना रही है। घोर टॉर्चर।"[120] वाना केवल अपने संबंधों को भारतीय संस्कारों के कारण इतने वर्षों से ढोती रही है। लेकिन वह अपने मन की आवाज़ को अंततः सुनती है और शिवेश को छोड़कर राहुल के साथ आगे बढ़ने का निर्णय करती है। शिवेश इस धोखे को सहन नहीं कर पाता और आत्महत्या कर लेता है।

केवल वाना और शिवेश ही नहीं अंजी और असलम, सारिका और जहाँगीर, ग्रेस और जैक, किसी के भी सम्बन्ध नहीं चल पाते। वहाँ के परिवेश के अनुसार संबंधों का टूटना कोई नई बात नहीं है, पाश्चात्य समाज में विवाह को मीनिंगलेस-सी रस्म माना जाता है। वाना मन ही मन सोचती है, "एक पुरुष या स्त्री का पल्ला पकड़ कर कौन बैठता है। जीवन में नए-नए उतार चढ़ाव आते रहते हैं, बार-बार प्यार, बार-बार जुड़ना और अलग होना, यह तो यहाँ का क्रम ही है, इसमें न अच्छा, न बुरा, अगर ग्रेस उसकी जगह होती तो कब का शिवेश को छोड़कर चली गयी होती। मेरा मन नहीं मिलता-उसने कहा होता-मन न मिले तो विवाह क्या ? साथ रहना क्यों? बहुतेरे लोग हैं, अवसर हैं, क्यों अपने को होम किया जाए।"[121]

---

[118] वही पृ. 153

[119] वही पृ. 101-102

[120] वही पृ. 105

[121] प्रियंवदा, उषा: 'अन्तर्वंशी', वाणी प्रकाशन, पृ. सं 191

यही है पाश्चात्य समाज की सच्चाई। संबंधों की तदर्थ व्यवस्था, रोज़मर्रा की ज़िन्दगी की व्यावहारिक सुविधाओं के लिए कायम किये जाने वाले अस्थायी संबंध ही पाश्चात्य समाज की वास्तविकता है।

स्त्री-पुरुष संबंधों के बारे में नैतिकता के दबाव से मुक्त खुलापन उपन्यास के लगभग सभी पात्रों में दिखाई पड़ता है। अमेरिका की व्यक्तिपरक सभ्यता में ऐसे अप्रिय रिश्तों को जबरदस्ती ढोने की विवशता नहीं है। भारतीय परिस्थितियों में संभव है कि ये संबंध घिसटते हुए सफल हो जायें। इस प्रकार उषा प्रियंवदा ने इस उपन्यास में पति-पत्नी सम्बन्ध में आयी असहजता, संबंधों का खोखलापन, दिखावे की संस्कृति, पति का स्वार्थभाव, पत्नी की महत्वकांक्षाओं का सूक्ष्म चित्रण किया है।

1.6 समलैंगिकता

समलैंगिकता का अस्तित्व प्राचीन काल से ही देखने को मिलता है। भले ही उस युग में इससे सम्बन्धी कानून निषेध रहा है, परन्तु आधुनिक युग में अब इसे विभिन्न देशों में कानूनी मान्यता मिल चुकी है। डॉ. मधु समलैंगिकता को परिभाषित करती हुई लिखती हैं- "पुरुष का पुरुष के प्रति और स्त्री का स्त्री के प्रति यौनिक एवं रोमांसपूर्ण आकर्षण समलैंगिकता के अंतर्गत आता है।"[122] उषा प्रियंवदा के कथा साहित्य में काम-संबंधों का चित्रण स्वाभाविक रूप से हुआ है। उन्होंने नारी की काम-भावना को पुरुषों के सदृश्य ही सहज माना है और उसी सहजता से चित्रण भी किया है।

'अन्तर्वंशी' उपन्यास में उषा प्रियंवदा ने क्रिस्तीन और वाना के समलैंगिक सम्बन्ध का चित्रण किया है। सारिका की मृत्यु के पश्चात् वाना को सदमा लगता है और वह मानसिक रूप से परेशान रहने लगती है। क्रिस्तीन जो कि राहुल की दोस्त होती है, राहुल के परिचय से ही शिवेश और वाना की भी दोस्त बनती है। वाना को इस तरह परेशान देखकर वह एक रोज़ उसका मन बहलाने के लिए अपने साथ घूमाने ले जाती है। क्रिस्तीन के साथ वाना को अच्छा महसूस होता है। शिवेश द्वारा केवल अपने देहसुख

---

[122] संधु, मधु: प्रवासी हिंदी कहानी और समलैंगिकता (शोधालेख), ढींगरा, सुधा ओम (प्रधान संपा.), विभोम स्वर (पत्रिका), पृ. सं. 48

के बारे में सोचना, जब चाहे तब वाना को अपने ऊपर खींच लेना, वाना की इच्छा की परवाह किये बिना। यह सब बातें वाना को परेशान करती हैं। वाना क्रिस्तीन के साथ पहली बार कामजन्य सुख अनुभव करती है। घुट-घुट कर जीती हुई वाना को क्रिस्तीन से वह स्नेह, वह सामीप्य महसूस होता है। क्रिस्तीन के साथ समलिंगी सम्बन्ध बनाना वाना ने कभी सपने में भी नहीं सोचा था, लेकिन वह सम्बन्ध उसे अच्छा लगता है। वह सोचती है, "क्रिस्तीन का साथ इतना देहसुख दे सकता है ? पर यह सच है, और साक्षी है वाना की स्वयं अपनी देह।"[123] वाना पहली बार अनुभव करती है कि "स्त्री शरीर! निर्वस्त्र, नग्न! कितना सुखद; कितनी विचित्र बात है कि वह पुरुषों को भी आकर्षित करता है और स्त्रियों को भी। देहसुख के लिए पुरुष की आवश्यकता नहीं, वह केवल संतान के लिए चाहिए।"[124] हालाँकि वाना जैविक रूप से समलिंगी प्रवृत्ति की नहीं थी। जब क्रिस्तीन वाना के साथ रहने की इच्छा ज़ाहिर करती है तब वाना उसे माना कर देती है यह सोचते हुए कि उन दोनों का एकसाथ कोई भविष्य नहीं हो सकता। कुछ समय पश्चात क्रिस्तीन द्युतिमा नाम की लड़की से विवाह करती है और दोनों मिलकर एक छोटी-सी बच्ची गोद लेती हैं।

उषा प्रियंवदा ने 'अन्तर्वंशी' में वाना और क्रिस्तीन के द्वारा स्त्री की काम भावना का, उनके आकर्षण का सहजता से चित्रण किया है।

1.7 स्थायी नागरिकता हेतु विवाह को माध्यम बनाना

प्रवास धारण करने के पश्चात् अथवा प्रवास धारण करने के पूर्व भी यह देखा गया है कि कुछ लोग सम्बन्धित देश की नागरिकता प्राप्त करने के लिए विवाह को माध्यम बनाते हैं। चूँकि इस संदर्भ में विभिन्न विकसित देशों द्वारा बनाई गयीं कठोर नीतियाँ व कानून निरंतर बदलती रहती हैं, जिससे अविकसित अथवा विकासशील देशों के निवासियों के लिए इन देशों की स्थायी नागरिकता प्राप्त करना अत्यंत कठिन कार्य प्रतीत होता है। इसके विपरीत विवाह के माध्यम से विकसित देशों की नागरिकता प्राप्त करना सरल

123 प्रियंवदा, उषा: 'अंतर्वंशी', वाणी प्रकाशन पृ. 101
124 वही पृ. 101

माना जाता है। अतः आजकल के दौर में भी कुछ लोग इस व्यवस्था का उचित व अनुचित लाभ उठाकर स्थायी नागरिकता प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।

'अंतर्वंशी' उपन्यास में सुबोध राय अमेरिका में स्थायी नागरिकता प्राप्त करने के लिए विवाह को माध्यम बनाता है। पहले से ही शादीशुदा होने के बावजूद वह सारा नाम की अमेरिकी लड़की से विवाह करता है। सारा के संबंध में लेखिका ने लिखा है, "सारा, सुबोध की पत्नी, मुस्कराती है, उसकी माँ ट्रेवल एजेंट है, अक्सर भारत जाती रहती है। सारा पहले उसी ट्रेवल एजेंसी में रिसेप्शनिस्ट थी। वहीं सुबोध का परिचय हुआ था... किसी ने प्रकट रूप से नहीं कहा, परन्तु सारा के पास अमेरिकन नागरिकता का प्रमाणपत्र था।"[125] सुबोध राय की सच्चाई का पता तब चलता है, जब उसके पिता सुबोध की पहली पत्नी को लेकर अमेरिका जाते हैं और सुबोध का पता पूछते-पूछते राहुल के घर पहुँचते हैं। राहुल द्वारा उन लोगों का परिचय पूछने पर वे उत्तर देते है, "मैं उसका बाप हूँ, और यह उसकी बीवी है।"[126]

व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए कुछ भी कर सकता है। लेखिका ने सुबोध राय के प्रसंग द्वारा यह उक्ति चरितार्थ की है। सुबोध अमेरिका की नागरिकता प्राप्त करने के लिए सारा से विवाह करता है।

1.8 नॉस्टैल्जिया

किसी व्यक्ति द्वारा मुड़-मुड़ कर देखना और अपने अतीत को याद करना 'नॉस्टैल्जिया' कहलाता है, जिसे हम 'अतीत के प्रति मोह' भी कह सकते हैं। जब व्यक्ति अपनी जन्मभूमि से दूर प्रवास में होता है तो वह अपने बीते समय को याद करते हुए भावुकतावश अपने देश से अत्यंत लगाव व प्रेम महसूस करता है। प्रवासी कथा साहित्य की मुख्य प्रवृत्ति है 'नॉस्टैल्जिया'। कमलेश्वर 'नॉस्टैल्जिया' को प्रवासी साहित्य का मुख्य तत्व स्वीकारते हुए लिखते है- "मैं समझता हूँ कि 'नॉस्टैल्जिया' या स्मृति कोई गलत मूल्य नहीं है। नॉस्टैल्जिक जो लिटरेचर है या जिसमें 'नॉस्टैल्जिया' है, स्तुति है, यादें हैं, वे अपने आप में बहुत गहरी

---

[125] प्रियंवदा, उषा: 'अंतर्वंशी', वाणी प्रकाशन पृ. 31-32

[126] वही पृ. सं 32

भी होती हैं और कारगार भी। खास तौर पर वे लोग जो भारत छोड़कर दूसरे देशों में चले गए हैं उन्हें तो निश्चित रूप से अपने देश की, अपने प्रान्त की, अपने गाँव की, अपने घर की याद सताती है। कितने लोग आते हैं अपने पुराने गाँव का नाम सुनकर। यहाँ हमारे पूर्वज रहते थे, ये पूर्व स्मृति ही 'नॉस्टैल्जिया' है।"[127]

उषा प्रियंवदा ने भी 'अंतर्वंशी' में 'नॉस्टैल्जिया' से घिरे प्रवासी भारतीयों का चित्रण किया है। राहुल विण्डसर में रहते हुए अपने किशोरावस्था के दिनों को याद करता है, उन दिनों को जब वह रत्ना से प्रेम करता था और उससे सबसे छिपकर मंदिर के पीछे मिला करता था। एक दिन अचानक से रत्ना की मृत्यु की खबर सुनकर वह बौखला जाता है और घर छोड़कर भाग जाता है। पुरानी स्मृतियों को वह याद करता है- "वह पुरानी पहचानी सड़कों, गलियों, गंगा के किनारे, नहरों के पुलों के आस-पास भटकता रहता है। सभी उसे देखकर प्यार से बोलते हैं, उसका हाल पूछते हैं। चाची सबसे पहले उसी की थाली में परोसती हैं। गौरव और बाऊजी चुप रहते हैं। अधिकतर वह भी। सिर झुकाकर चुपचाप खाने का स्वाद लेता रहता है। घुटी हुई अरहर की दाल, आलू मटर की तरकारी, टीन की छत के नीचे की रसोई में से कोयलों पर फुलाई गई रोटी की खुशबू चारों तरफ़ मँडराती रहती है।"[128]

वाना भी विण्डसर की कड़ाके वाली ठण्ड झेलते हुए भारत के सुनहरे मौसम और पुरानी स्मृतियों को याद करती हुई सोचती है, "वहाँ सब जगह धूप होगी, गरम, गुनगुनी धीरे-धीरे शरीर और चेहरे को थपथपाती हुई; वहाँ बनारस में, जहाँ चुन्नी और मुन्नी बुआ अपनी दिनचर्या के कामकाज में व्यस्त होंगी। बड़ियाँ, मंगौडियाँ तोड़ने में, आलू और साबूदाने के पापड़ बनाने में, गंगा स्नान और पूजा-आरती में।"[129]

अतः उषा प्रियंवदा ने 'अंतर्वंशी' में 'नॉस्टैल्जिया' से घिरे प्रवासी भारतीयों का भावुकतापूर्ण चित्रण किया है, जो अपने देश को याद करते हुए सुखद अनुभूति से गुज़रते हुए दिखाई पड़ते हैं।

---

[127] मुसीव्वर, रहमान: उन्होंने साहित्य की अपनी परम्परा तैयार की है कमलेश्वर (साक्षात्कार), सिंह, डॉ. नमिता (प्रधान संपा.), वर्तमान साहित्य (पत्रिका), पृ. सं. 18-19

[128] प्रियंवदा, उषा: 'अंतर्वंशी', वाणी प्रकाशन पृ. 64

[129] वही पृ. सं. 65

1.9 संबंधों में स्थायित्व का अभाव

पश्चिमी समाज में संबंधों के सहारे जीवन जीने का प्रचलन नहीं है। वहाँ व्यक्तिगत आज़ादी को महत्व देते हुए पारिवारिक व सामाजिक बंधनों से रहित जीवनयापन करने को श्रेष्ठ समझा जाता है। इसके विपरीत भारतीय समाज व संस्कृति का मूलाधार संबंधों में व्याप्त आत्मीयता, प्रेम व जुड़ाव है। इस संदर्भ में निर्मला जैन का कथन है- "संबंधों की यह तदर्थ व्यवस्था, रोज़मर्रा की ज़िन्दगी की व्यावहारिक सुविधाओं के लिए कायम किये जानेवाले अस्थायी संबंधों की यह दुनिया, कम-से-कम उस समय तक भारतीय जीवन में आचरण का सहज-स्वीकार्य ढंग नहीं था।"[130]

पाश्चात्य देशों में निवास करते समय प्रवासी भारतीय समाज भी स्थानीय संस्कृति के विविध पक्षों को आत्मसात करता है। अतः प्रवासी भारतीयों का रुझान भी परिवेशगत कारणों के प्रभावाधीन अस्थायी संबंधों की ओर निरंतर बढ़ता ही जा रहा है। 'अंतर्वंशी' उपन्यास में भी संबंधों में स्थायित्व का अभाव शुरू से अंत तक दिखाई पड़ता है। सारिका और जहाँगीर का सम्बन्ध लम्बी दूरी के कारण टूट जाता है। सारिका वाना को बताती है कि उसके प्रेमी जहाँगीर का "निकाह बरसों पहले हो चुका था लेकिन रुखसती नहीं हुई थी, वह भी हो गई।"[131] यह सच्चाई जानकर सारिका जहाँगीर से अलग हो जाती है। जहाँगीर ने उससे निकाह की बात नहीं बतायी थी, वह चाहते थे कि उनकी एक पत्नी पाकिस्तान में रहे और दूसरी अमेरिका में। लेकिन यह सारिका को मंज़ूर नहीं था। वह कहती है, "मेरी भी इज़्ज़त है आत्म-सम्मान है घमंड है मुझे अपने प्यार पर। मैं साझा नहीं कर सकती या इस पार या उस पार।"[132] जहाँगीर ने सारिका के साथ रहने का वादा किया था लेकिन वह अपना वादा तोड़ देता है, सारिका के साथ विश्वासघात करता है।

अंजी भी सारिका की भाँति विश्वासघात का शिकार होती है। अंजी अपने पुराने दिनों को याद करती हुई वाना से कहती है, "यह ख़्याल बार-बार आता है कि हम मियाँ-बीवी में कितना प्यार, और

---

130 जैन निर्मला: कथा समय में तीन हमसफ़र, राजकमल प्रकाशन, पृ. 149

131 प्रियंवदा, उषा: 'अंतर्वंशी', वाणी प्रकाशन पृ. 76

132 वही पृ. 76

मुहब्बत थी। ढाका से इस्लामाबाद, वहाँ से शिकागो। दुःख-सुख के साथी, असलम को यहाँ आकर अमरीकी इम्तिहान पास करने में कितनी दिक्कतें हुईं; टाइम ही नहीं मिलता था प्रिपेयर करने को। दिन में वीडियो स्टोर देखते थे, रात में टैक्सी चलाते थे। जब पास हो गए और अस्पताल में नौकरी मिली तो पता नहीं कहाँ से यह ग्लोरिया टपक पड़ी। पता नहीं क्या जादू कर दिया है। अच्छा बताओ, क्या इन गोरी औरतों को कोई गुर आता है जो हमें नहीं आता।"[133] इतने मधुर सम्बन्ध को असलम ने बिना कुछ सोचे तोड़ दिया।

ग्रेस और जैक का सम्बन्ध भी कुछ ही समय तक चलता है। ग्रेस और जैक घर बेचने वाली कम्पनी में बिज़नेस पार्टनर होते हैं। दोनों साथ-साथ काम करते हैं लेकिन एक दिन जैक ग्रेस को अपनी दूसरी गर्लफ्रेंड के बारे में बताता है। ग्रेस वाना को जैक के सच के बारे में बताती है, "तुम्हें याद है, हमने उस वकील लड़की को फ्लैट बेचा था-तभी जैक की मुलाक़ात शैली से हुई। मेरी पीठ पीछे वह मिलते रहे और अब शैली को बच्चा होने वाला है। जैक कहता है वह शैली को प्यार करता है और उसके साथ अपना बच्चा पालना चाहता है।"[134] पाश्चात्य समाज में विवाह सम्बन्ध तभी तक निभाये जाते हैं जब तक दूसरा अधिक आकर्षक व्यक्ति न मिले।

लेखिका ने पाश्चात्य समाज की सच्चाई के बारे में लिखा है, "बिना विवाह साथ रहना, बॉयफ्रेंड-उसका शिशु; जिनैल के दोनों बच्चों के दो अलग-अलग पिता हैं, और साथ में एक भी नहीं रहता, सरकारी ख़र्च पर पल रहे हैं।"[135] यह पाश्चात्य समाज की सच्चाई है।

इस उपन्यास में वर्णित प्रसंगों के माध्यम से यह देखा जा सकता है कि पाश्चात्य समाज में तदर्थ संबंधों का चलन है, अधिकांश रिश्ते अस्थायी ही होते हैं। यहाँ भारतीय संस्कृति की तरह संबंधों को निभाने का चलन नहीं दिखाई पड़ता।

---

[133] वही पृ. 127

[134] प्रियंवदा, उषा: 'अंतर्वंशी', वाणी प्रकाशन पृ. 152

[135] वही पृ. 238

1.10 जीवन में अर्थ का महत्व

प्रवासी भारतीय समाज में परिव्याप्त जटिलताओं के पीछे सबसे बड़ा कारण 'आर्थिक पक्ष' है। भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अर्थ एक आवश्यक साधन है। वैज्ञानिकता , औद्योगिक विकास और भौतिक सुख-सुविधाओं के प्रति बढ़ते आकर्षण से अर्थ प्राप्ति ही मनुष्य का चरम लक्ष्य बनता जा रहा है। समाज में प्रतिष्ठा और सम्मान की कसौटी मानवमूल्य न होकर भौतिक समृद्धि होती जा रही है।

हमारे सभी सामाजिक संबंधों और पारिवारिक रिश्तों पर अर्थतंत्र हावी होता जा रहा है। आत्मीय रिश्तों की पहचान और परख तथा उन संबंधों के निर्वाह में अर्थ-प्रधान दृष्टि प्रमुख हो जाने से आज सम्बन्ध निभाये नहीं ढोये जा रहे हैं। पाश्चात्य समाज में जीवन में अर्थ के बढ़ते महत्व के कारण ही संबंधों में खिंचाव, ठण्डापन, व संवेदनहीनता दिखाई पड़ती है। दूर के सम्बन्ध यथा मौसी, बुआ, चाची आदि के साथ ही यह स्थिति नहीं है अपितु अत्यंत निकट संबंध, पति-पत्नी, भाई-बहन, पिता-पुत्र, आदि संबंधों की भी यही स्थिति है। 'अन्तर्वंशी' उपन्यास में भी जीवन में अर्थ के बढ़ते हुए महत्व के कारण संबंधों में आ रहे बदलाव को देखा जा सकता है।

आर्थिक सम्पन्नता या विपन्नता प्रवासी जीवन की बहुत बड़ी सच्चाई रही है। जहाँ संपन्न वर्ग अपनी विशिष्ट सामाजिक स्थिति पर गर्व अनुभव करता है, वहाँ निम्न मध्यवर्ग को अपने जीवन के अभाव और कटुताएँ काँटे की तरह चुभती रहती हैं। 'अन्तर्वंशी' में वाना भी अपने सपनों में खोयी रहती है। वाना का जीवन अभावों से घिरा हुआ है। अपनी साधारण स्थिति को भूलकर असाधारण सपने देखती है, पाश्चात्य समाज की चकाचौंध देखकर वह भी सब कुछ पाने को आतुर हो जाती है - "मन में और भी इच्छाएँ हैं। कितनी ढेर सारी इच्छाएँ, जो दिन पर दिन बढ़ती ही जाती हैं। अपना निजी घर, अपनी गाड़ी जो आये दिन धोखा न दे, समाज में सम्मान, शिवेश की अच्छी नौकरी। यह नहीं कि हर साल नए कॉन्ट्रैक्ट का इंतज़ार। इस विभाग से उस विभाग तक। इतना पैसा कि किसी चीज़ का दाम न पूछना पड़े। यात्राएँ,

जैसे कि और लोग करते हैं, पैलेस ऑन व्हील, राजस्थान, कर्नाटक, केरल, हैलसियोन कॉसल, लंदन! होनो लूलू...।"[136]

वाना मन ही मन सोचती है कि जब से वह अमेरिका पहुँची है उसने देखा है सभी लोगों को पागलों की तरह पैसों के पीछे भागते हुए - "आसपास के सभी लोग एक होड़ में, एक पागल दौड़ में रत हैं। छोटे मकान से बड़ा मकान, एक गाड़ी से दो गाड़ियाँ; सस्ते से महँगा ही महँगा। छुट्टियाँ बीतती हैं, स्पेन में, हवाई में, मैक्सिको में। रामबाग पैलेस और कोवलम में। हाथों की उँगलियों में बड़े-बड़े हीरे झमकाती हुई वे सबकी-सब उसकी एकदम उपेक्षा करती हैं।"[137] वाना और शिवेश के बीच बढ़ती दूरियों का एक महत्वपूर्ण कारक है- आर्थिक तंगी- जो दोनों के रिश्तों में दरार उत्पन्न करता है।

आर्थिक विषमताओं ने मनुष्य को पीसकर रख दिया है। इस अर्थकेंद्रित समाज व्यवस्था ने आज हर स्नेहिल संबंधों पर कुल्हाड़ी चलायी है। उपन्यास में शालिनी और सारिका दोनों मौसेरी बहने हैं। दोनों उच्चविद्या विभूषित हैं। एक डॉक्टर है, एक पीएचडी। किन्तु दोनों के परिवार में प्रॉपर्टी को लेकर मनमुटाव है। शालिनी सारिका की माँ के संबंध में कहती है - "मौसी हैं, बरसों से अनबन है, नाना की प्रॉपर्टी को लेकर।"[138] यह मनमुटाव इस कदर बढ़ जाता है कि सारिका की मृत्यु की खबर सुनकर शालिनी तो पहुँच जाती है, किन्तु शालिनी के माता-पिता अन्त्येष्टि में नहीं पहुँचते, क्योंकि शालिनी के माँ-बाप ने अभी तक मनमुटाव नहीं ख़त्म किया है। शालिनी झूठ बोलकर सच्चाई पर पर्दा डालने की कोशिश करती है - "मौसी! पापा को डॉक्टर ने मना किया है। अभी बाईपास सर्जरी से उबरे नहीं है, मम्मी उन्हें अकेला छोड़ नहीं सकती।"[139] शालिनी की मौसी उसके झूठ को जानती हैं, शालिनी से कटु स्वर में कहती हैं, "बातें मत बनाओ शालिनी। मैं सब समझती हूँ। छोटे दिल की है तेरी अम्मा।"[140] यहाँ एक बहन के साथ इतना

---

136 प्रियंवदा, उषा: 'अंतर्वंशी', वाणी प्रकाशन पृ. 19
137 वही पृ. 17
138 प्रियंवदा, उषा: 'अंतर्वंशी', वाणी प्रकाशन पृ. 59
139 वही पृ. 94
140 वही पृ. 94

बड़ा हादसा हो जाता है, किन्तु दूसरी बहन उसे सांत्वना देने भी नहीं पहुँचती क्योंकि यहाँ रिश्ता नहीं रुपया पैसों का मूल्य अधिक महत्वपूर्ण है।

उषा प्रियंवदा ने आर्थिक तंत्र के कारण सामाजिक स्थितियों में आने वाले बदलाव और उससे रिश्तों पर पड़ने वाले प्रभाव का यथार्थ चित्रण किया है। आज रिश्ते भावुकता से नहीं उपयोगिता और व्यावहारिकता के तर्कों से निर्धारित होने लगे हैं। यह बहुत ही दुःखद और सोचनीय है, हमारा समाज किस ओर बढ़ रहा है।

अनुभव की प्रमाणिकता और गहन संवेदनीयता से युक्त उषा प्रियंवदा का यह उपन्यास प्रवासी जीवन को उघाड़ कर रखने में पूर्णतया सक्षम है। परिस्थितियों से हार ना मानते हुए, एकाधिक स्तरों पर जीते हुए वाना और अंजी दोनों ही प्रवासी स्त्रियों ने अपने 'स्व' को पहचानकर अपने व्यक्तित्व को निखारकार, अमेरिका जैसे देश में अपने बल पर अपनी पहचान बनाई और अपने अनुसार अपने जीवन की दिशा को गति दी। अपनी ज़मीन छोड़कर महत्वकांक्षाओं और लालसाओं की पूर्ति हेतु जब व्यक्ति प्रवास करता है तो उसे नये परिवेश और नयी ज़मीन पर स्वयं को स्थापित करने के लिए संघर्ष करना पड़ता है और कई बार यह संघर्ष जब असफल होता है तो व्यक्ति के मन में मोहभंग जैसी स्थितियाँ बन जाती हैं। उषा प्रियंवदा अमेरिकावासी इन पात्रों और उनकी ज़िन्दगी को गहरी अंतर्दृष्टि से उद्घाटित करती हैं। लेखिका ने विभिन्न पात्रों के माध्यम से पाश्चात्य संस्कृति व मूल्यों के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही प्रभावों का चित्रण किया है। वाना द्वारा अपने 'स्व' को पा लेना, अंजी का आत्मनिर्भर बनना सकारात्मक प्रभाव कहे जायेंगे तो वहीं संबंधों में आयी कटुता, अस्थायी सम्बन्ध, दाम्पत्य संबंधों में बढ़ती शून्यता, रिक्तता, आदि नकारात्मक प्रभाव कहे जायेंगे। लेखिका ने उपन्यास में अकेलेपन का दंश झेलते हुए विभिन्न पात्रों का चित्रण किया है। स्थानीय जीवन-शैली व प्रवासी जीवन को प्रभावित करने वाले कारक अकेलेपन की स्थिति को बनाने व उसमें कई गुणा वृद्धि करने में अपनी भूमिका निभाते हैं। स्त्री-पुरुष संबंधों के बारे में नैतिकता के दबाव से मुक्त खुलापन उपन्यास के लगभग सभी पात्रों में दिखाई

पड़ता है। अमेरिका की व्यक्तिपरक सभ्यता में ऐसे अप्रिय रिश्तों को जबरदस्ती ढोने की विवशता नहीं है। भारतीय परिस्थितियों में संभव है कि ये संबंध घिसटते हुए सफल हो जायें। इस प्रकार उषा प्रियंवदा ने इस उपन्यास में पति-पत्नी सम्बन्ध में आयी असहजता, संबंधों का खोखलापन, दिखावे की संस्कृति, पति का स्वार्थभाव, पत्नी की महत्वकांक्षाओं, का सूक्ष्म चित्रण किया है। उन्होंने वाना और क्रिस्तीन के द्वारा स्त्री की काम भावना का, उनके आकर्षण का सहजता से चित्रण किया है। व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए क्या नहीं कर सकता। उपन्यास में लेखिका ने सुबोध राय के प्रसंग द्वारा उसकी स्वार्थी प्रवृत्ति का चित्रण किया है जो अमेरिका की नागरिकता प्राप्त करने के लिए विवाह को माध्यम बनाता है। 'नॉस्टैल्जिया' से घिरे प्रवासी भारतीयों का भावुकतापूर्ण चित्रण दिखाई पड़ता है जो अपने देश को याद करते हुए सुखद अनुभूति से गुज़रते हुए दिखाई पड़ते हैं। उपन्यास में वर्णित प्रसंगों के माध्यम से यह देखा जा सकता है कि पाश्चात्य समाज में तदर्थ संबंधों का चलन है, अधिकांश रिश्ते अस्थायी ही होते हैं। लेखिका ने आर्थिक तंत्र के कारण सामाजिक स्थितियों में आने वाले बदलाव और उससे रिश्तों पर पड़ने वाले प्रभाव का चित्रण किया है। आज रिश्ते भावुकता से नहीं उपयोगिता और व्यावहारिकता के तर्कों से निर्धारित होने लगे हैं। यह बहुत ही दुःखद और विचारणीय प्रसंग है।

संदर्भ

89.प्रियंवदा, उषा: 'अन्तर्वंशी', वाणी प्रकाशन, 2018 पृ. सं. 17

90.वही पृ. सं 155

91.वही पृ. सं 59

92.वही पृ. सं. 124

93.जैन, निर्मला: कथा समय में तीन हमसफ़र, राजकमल प्रकाशन, 2015, पृ. सं 159-160

94. प्रियंवदा, उषा: 'अन्तर्वंशी', वाणी प्रकाशन, 2018, पृ. सं 241

95. जैन, निर्मला: कथा समय में तीन हमसफ़र, राजकमल प्रकाशन, 2015, पृ. सं 158

96. खेतान, प्रभा: स्त्री का सारतत्व, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016

97. प्रियंवदा, उषा: 'अन्तर्वंशी', वाणी प्रकाशन, 2018, पृ. सं 143

98. वही पृ. सं 144

99. वही पृ. सं. 107-108

100. वही पृ. सं 110

101. वही पृ. सं 237

102. Rushdie, Salman: East, West, Vintage, London

103. प्रियंवदा, उषा: 'अन्तर्वंशी', वाणी प्रकाशन, 2018, पृ. सं 30

104. वही पृ. सं. 79

105. वही पृ. सं 59

106. Pataki, Eva: Caught between two worlds : The confusion of cultural Identity in Three British Asian Novels, University of Debrecen, 2015, page no. 345

107. वार्ष्णेय, डॉ. लक्ष्मीसागर: द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, राजपाल एंड संस, दिल्ली, 1973, पृ. 81

108. बेदी, सुषम: प्रवासी लेखिका की दोहरी भूमिका और जिम्मेदारियाँ (आलेख), पाण्डेय, प्रो. नन्द किशोर (प्रधान संपा), प्रवासी जगत (पत्रिका), आगरा, केंद्रीय हिंदी संस्थान, सितंबर -नवंबर, 2017 पृ.स. 01

109. प्रियंवदा, उषा: 'अन्तर्वंशी', वाणी प्रकाशन, 2018 पृ. सं 15

110. वही पृ. सं. 136

111. अवस्थी, देवी शंकर: नयी कहानी : संदर्भ और प्रकृति, राजकमल प्रकाशन, 1973 पृ.

112. प्रियंवदा, उषा: 'अन्तर्वंशी', वाणी प्रकाशन, 2018 पृ. सं 169

113. वही पृ. सं. 169

114. मदान,डॉ. इंद्रनाथ: आधुनिकता और हिंदी साहित्य, राजकमल प्रकाशन, 1973, पृ. स. 74

115. प्रियंवदा, उषा: 'अन्तर्वंशी', वाणी प्रकाशन, 2018 पृ. सं 100

116. वही पृ. सं. 105

117. वही पृ. सं. 114

118. वही पृ. सं. 153

119. वही पृ. सं. 101-102

120. वही पृ. सं. 105

121. वही पृ. सं. 191

122. संधु, मधु: प्रवासी हिंदी कहानी और समलैंगिकता (शोधालेख), ढींगरा, सुधा ओम (प्रधान संपा.), विभोम स्वर (पत्रिका), सिहोर, अप्रैल-जून पृ. सं. 48

123. प्रियंवदा, उषा: 'अन्तर्वंशी', वाणी प्रकाशन, 2018 पृ. सं 111

124. वही पृ. सं. 111

125. वही. पृ. सं. 31-32

126. वही पृ. सं. 32

127. मुसीव्वर, रहमान: उन्होंने साहित्य की अपनी परम्परा तैयार की है कमलेश्वर (साक्षात्कार), सिंह, डॉ. नमिता (प्रधान संपा.), वर्तमान साहित्य (पत्रिका), अलीगढ़, मई संयुक्त अंक, 2006, पृ. सं. 18-19

128. प्रियंवदा, उषा: 'अन्तर्वंशी', वाणी प्रकाशन, 2018 पृ. सं 64

129. वही पृ. सं. 65

130. जैन, निर्मला: कथा समय में तीन हमसफ़र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2015 पृ. सं. 149

131. प्रियंवदा, उषा: 'अन्तर्वंशी', वाणी प्रकाशन, 2018 पृ. सं 76

132. वही पृ. सं. 76

133. वही पृ. सं. 127

134. वही पृ सं. 152

135. वही पृ. सं. 238

136. वही पृ. सं. 19

137. वही पृ. सं. 17

138. वही पृ. सं. 59

139. वही पृ. सं. 94

140. वही पृ. सं. 94

उपसंहार

प्रवास शब्द मनुष्य की गतिशीलता का बोधक है। मानव-सभ्यता के इतिहास से ही प्रवासन की क्रिया को देखा जाता रहा है। ऐतिहासिक काल में व्यक्ति ने धर्म और संस्कृति के प्रचार-प्रसार तथा स्थानांतरणीय कृषि करने के लिए अपनी यात्रा शुरू की थी। आधुनिक काल में अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में औद्योगिकीकरण की लहर के कारण पूरे विश्व में नगरीय प्रवास की प्रक्रिया तेजी से बढ़ी। मनुष्य जब सुख-सुविधाओं से लेस जीवन जीने के लिए एक भौगोलिक सीमा से दूसरे भौगोलिक सीमा में स्थानांतरण करता है तो उसे प्रवासी कहते हैं। प्रवास के मुख्यतः दो कारक हैं प्रत्याकर्षक और आकर्षक कारक। जब व्यक्ति रोज़गार, मूलभूत आवश्यकताओं और प्राकृतिक आपदाओं के कारण विवश होकर प्रवास करता है तो उसे प्रत्याकर्षक कारक कहते हैं और जब व्यक्ति स्वेच्छा से बेहतर अवसरों की तलाश में सुख-सुविधाओं से भरा पूरा जीवन जीने के लिए विकसित देशों में प्रवास करता है तो उसे आकर्षक कारक कहते हैं। प्रवास को चार प्रकार में विभाजित किया गया है स्वेच्छिक, बाध्यकारी, परंपरागत और अप्रत्याशित प्रवास। स्वेच्छा से किया गया प्रवास स्वेच्छिक प्रवास कहलाता है तो मूलभूत आवश्यकताओं तथा सुख-सुविधाओं के आभाव में किया गया प्रवास बाध्यकारी प्रवास कहलाता है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी लोगों द्वारा अपनाया गया प्रवास परंपरागत प्रवास कहलाता है और आकस्मिक तथा अनाहूत कारणों से किया गया प्रवास अप्रत्याशित प्रवास कहलाता है। प्रवासी भारतीयों का इतिहास औपनिवेशिक काल से प्रारम्भ होकर अब तक जारी है। प्रवासी भारतीयों की स्थिति समयानुसार बदलती रही। औपनिवेशकालीन प्रवासित लोगों की स्थिति अत्यंत त्रासद थी। वे लोग विशेष प्रकार के एग्रीमेंट के तहत गिरमिटिया मज़दूर के रूप में मॉरीशस, फीजी, सूरीनाम, दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में बहला-फुसला कर ले जाए गए। स्वाधीनता के पश्चात् लोगों ने शिल्पियों, व्यवसायिओं, व्यापारियों तथा फैक्ट्री मज़दूरों के रूप में थाईलैंड, मलेशिया, सिंगापुर आदि देशों में प्रवास किया और भूमण्डलीकरण के दौरान लोगों ने बेहतर अवसरों की तलाश में उच्च पदों पर कार्य करने के लिए डॉक्टर, इंजीनियर, प्रोफेसर,

प्रबंधन परामर्शदाता, वित्तीय विशेषज्ञ के रूप में अमेरिका, कनाडा, ब्रिटेन, ऑस्ट्रेलिया आदि देशों में प्रवास किया और लगातार कर रहे हैं। प्रवासी भारतीयों की तीन श्रेणीयाँ हैं। पहली श्रेणी में अनिवासी भारतीय आते हैं जो भारत के बाहर रहते हैं तथा जिन्होंने वित्तीय वर्ष के दौरान लगभग 182 दिन भारत में बिताये हों या पिछले चार वर्षों में 365 दिन तक रहे हों और संबंधित वर्ष में 60 दिनों तक रहे हों। दूसरी श्रेणी में भारतीय मूल के व्यक्ति आते हैं जो भारतीय पासपोर्ट धारक हों या जिनके माता-पिता या पितामह भारत की नागरिकता रखते हों। तीसरी श्रेणी में भारतीय विदेशी नागरिक आते हैं जो 26 जनवरी, 1950 को या उसके बाद भारत की नागरिकता रखते हों या 15 अगस्त, 1947 के बाद भारत का हिस्से बने किसी क्षेत्र से संबंधित हों और बाद में विदेश जाकर बस गया हो। प्रवासी व्यक्तियों को मूल स्थान छोड़कर अन्य स्थान पर बसने के दौरान कई तरह के संकटों का सामना करना पड़ता है जिनमें सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, अस्मिता सम्बन्धी संकट प्रमुख हैं। नयी ज़मीन और नए परिवेश में जाने के पश्चात् प्रवासित व्यक्ति स्वयं को अजनबी और अकेला महसूस करता है। प्रत्येक समाज की अपनी विलक्षणताएँ होती हैं, जिसे प्रवासी व्यक्ति विभिन्न स्तरों पर अनुभव करता है। उसके अपने समाज और अपनाए हुए देश के समाज की संरचनाएँ तथा उसमें व्याप्त अंतर उसके मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव ड़ालते हैं। प्रवास के दौरान प्रवासी अपने मूल समाज के साथ खड़ा होता है तो कभी स्वयं को प्रवासी समाज का अंग स्वीकार करता है। विदेशी धरा पर रहते हुए प्रवासी स्थानीय समाज की संस्कृति व अपने देश की संस्कृति का विविध पक्षों के आधार पर मूल्यांकन व तुलना करते रहते हैं। नयी जगह और नये लोगों के बीच प्रवासी व्यक्ति अपने अस्तित्व और अस्मिता सम्बन्धी प्रश्नों को लेकर भी चिंतित रहते हुए परिस्थितियों से जूझते हुए जीवन निर्वाह करते हैं। प्रवासी साहित्य अपने मूल देश से पृथक किसी दूसरे देश में बसे हुए लोगों द्वारा रचा गया वह संसार है, जो अतीत के मोह में लिपटा हुआ और यथार्थ को पकड़ने के लिए प्रयासरत है। हिंदी के प्रवासी साहित्य का अपना वैशिष्टय है, जो उसकी संवेदना, जीवन दृष्टि, सरोकार तथा परिवेश में परिलक्षित होता है। परिवेश बदल जाने से प्रवासी के जीवन में विषमताएँ और जटिलताएँ आती हैं। दो संस्कृतियों में सामंजस्य स्थापित करने में नए संस्कार नयी सोच, नया

दृष्टिकोण और नयी-नयी मान्यताएँ बनने लगती हैं और इसी की अभिव्यक्ति प्रवासी साहित्य में होती है। विदेशी पृष्ठभूमि ने हिंदी रचनाक्षेत्र को विस्तृत फलक दिया है। प्रवासी हिंदी रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में विदेशी जीवन का चित्रण कर न सिर्फ़ साहित्य के माध्यम से हिंदी और उसके साहित्य को वैश्विक आधार प्रदान किया है बल्कि भारत में भी हिंदी साहित्य को दिशा प्रदान करने में अहम् भूमिका निभाई है।

प्रवासी मध्यमवर्गीय कामकाजी स्त्री का जीवन संघर्ष, उसकी अस्मिता और अस्तित्व से जुड़े प्रश्नों को उषा प्रियंवदा ने अपनी रचनाओं में उठाया है। उनका कथा साहित्य प्रवासी जीवन के मधुर-तिक्त अनुभवों की दास्तान है। उनकी रचनाएँ पाठकों को बहुत गहराई तक उद्वेलित करती हैं। प्रवासी रचनाकार होने के नाते वे दोनों संस्कृतियों और परिवेश की भुक्त भोगी रही हैं। अपने समसामयिक युगबोध को उसकी सही पृष्ठभूमि में रखकर उसे पूरी ईमानदारी के साथ अभिव्यक्त करने का सफल प्रयास लेखिका ने किया है। कथ्यगत विविधता, सहजता, सरलता इनकी रचनाओं की प्रमुख विशेषता है। विदेशी प्रभाव के कारण इनकी कहानियों और उपन्यासों में अंग्रेज़ी का प्रयोग प्रमुख रूप में मिलता है, किंतु यह स्वाभाविकता और पाठकीय विश्वसनीयता का भी तकाजा है। गहरी मानवीय संवेदना की मौलिक अभिव्यंजना पद्धति के कारण वे हिंदी की समर्थ लेखिका हैं।

हिंदी प्रवासी कथा साहित्य दो धाराओं में विभाजित है। पहली धारा के अंतर्गत वे कथाकार आते हैं जिनके पूर्वजों को गिरमिटिया मजदूर के रूप में मॉरीशस, फीजी, सूरीनाम, दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में ले जाया गया तथा जिन्होंने आजीवन अंग्रेज़ों की गुलामी कर कष्टमय जीवन व्यतीत किया। अपने पूर्वजों की पीड़ा, व्यथा, संघर्षपूर्ण जीवन तथा सामयिक बोध को इन रचनाकारों ने अपनी लेखनी में लिपिबद्ध किया। दूसरी धारा के अंतर्गत वे रचनाकार आते हैं जिन्होंने स्वेच्छा से विकसित देशों में स्थानांतरण किया। नए समाज, नवीन परिवेश और नए लोगों के बीच प्रवासियों द्वारा भोगे जाने वाले संकटों का मार्मिक चित्रण किया। अमरीका, ब्रिटेन, कनाडा, डेनमार्क आदि देशों के कथा साहित्य में अतीत के प्रति मोह, सांस्कृतिक आघात, अकेलापन, मानसिक द्वन्द्व, मूल्यों की टकराहट, अस्तित्व व

अस्मिता मूलक संघर्ष दिखाई पड़ता है। एक विशेष बात जो दोनों ही धाराओं के रचनाकारों और उनकी रचनाओं में दिखाई पड़ती है वह है भारतीय बोध। दोनों ही प्रकार के प्रवासी साहित्य में भारत विद्यमान है चाहे वह धर्म या संस्कृति के रूप में हो या चाहे नॉस्टेल्जिया के रूप में। उषा प्रियंवदा दूसरी धारा के अंतर्गत आती हैं उन्होंने अपने कथा साहित्य में प्रवासी की पीड़ा का यथार्थ चित्रण किया। अन्य प्रवासी रचनाकारों की तुलना में उषा प्रियंवदा का रचना- संसार व्यापक और विस्तृत है। अमेरिकी परिवेश और प्रवासी भारतीयों की स्थिति को यथार्थ रूप में चित्रित करना, परिवेश और पात्रों का बेहद सूक्ष्म वर्णन करना उनके लम्बे समय के प्रवास का ही परिणाम है। अतः कहा जा सकता है कि उषा प्रियंवदा ने सामयिक युग-बोध को उसकी सही पृष्ठभूमि में पकड़ने और ईमानदारी पूर्वक अभिव्यक्त करने का सफल प्रयास किया है।

अनुभव की प्रमाणिकता और गहन संवेदनीयता से युक्त 'अन्तर्वंशी' उपन्यास प्रवासी जीवन को उघाड़ कर रखने में पूर्णतया सक्षम है। परिस्थितियों से हार न मानते हुए, एकाधिक स्तरों पर जीते हुए वाना और अंजी दोनों ही प्रवासी स्त्रियों ने अपने 'स्व' को पहचानकर अपने व्यक्तित्व को निखारकार, अमेरिका जैसे देश में अपने बल पर अपनी पहचान बनाई और अपने अनुसार अपने जीवन की दिशा को गति दी। अपनी ज़मीन छोड़कर महत्वकांक्षाओं और लालसाओं की पूर्ति हेतु जब व्यक्ति प्रवास करता है तो उसे नये परिवेश और नयी ज़मीन पर स्वयं को स्थापित करने के लिए संघर्ष करना पड़ता है और कई बार यह संघर्ष जब असफल होता है तो व्यक्ति के मन में मोहभंग जैसी स्थितियाँ बन जाती हैं। उषा प्रियंवदा अमेरिकावासी इन पात्रों और उनकी ज़िन्दगी को गहरी अंतर्दृष्टि से उद्घाटित करती हैं। लेखिका ने विभिन्न पात्रों के माध्यम से पाश्चात्य संस्कृति व मूल्यों का सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही प्रभावों का चित्रण किया है। वाना द्वारा अपने 'स्व' को पा लेना, अंजी का आत्मनिर्भर बनना सकारात्मक प्रभाव कहे जायेंगे तो वहीं संबंधों में आयी कटुता, अस्थायी सम्बन्ध, दाम्पत्य संबंधों में बढ़ती शून्यता, रिक्तता, आदि नकारात्मक प्रभाव कहे जायेंगे। लेखिका ने उपन्यास में अकेलेपन का दंश झेलते हुए विभिन्न पात्रों का चित्रण किया है। स्थानीय जीवन-शैली व प्रवासी जीवन को प्रभावित करने वाले कारक अकेलेपन

की स्थिति को बनाने व उसमें कई गुणा वृद्धि करने में अपनी भूमिका निभाते हैं। स्त्री-पुरुष संबंधों के बारे में नैतिकता के दबाव से मुक्त खुलापन उपन्यास के लगभग सभी पात्रों में दिखाई पड़ता है। अमेरिका की व्यक्तिपरक सभ्यता में ऐसे अप्रिय रिश्तों को जबरदस्ती ढोने की विवशता नहीं है। भारतीय परिस्थितियों में संभव है कि ये संबंध घिसटते हुए सफल हो जायें। इस प्रकार उषा प्रियंवदा ने इस उपन्यास में पति-पत्नी सम्बन्ध में आयी असहजता, संबंधों का खोखलापन, दिखावे की संस्कृति, पति का स्वार्थभाव, पत्नी की महत्वकांक्षाओं, का सूक्ष्म चित्रण किया है। उन्होंने वाना और क्रिस्तीन के द्वारा स्त्री की काम भावना का, उनके आकर्षण का सहजता से चित्रण किया है। व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए क्या नहीं कर सकता। उपन्यास में लेखिका ने सुबोध राय के प्रसंग द्वारा उसकी स्वार्थी प्रवृत्ति का चित्रण किया है जो अमेरिका की नागरिकता प्राप्त करने के लिए विवाह को माध्यम बनाता है। 'नॉस्टैल्जिया' से घिरे प्रवासी भारतीयों का भावुकतापूर्ण चित्रण दिखाई पड़ता है जो अपने देश को याद करते हुए सुखद अनुभूति से गुज़रते हुए दिखाई पड़ते हैं। उपन्यास में वर्णित प्रसंगों के माध्यम से यह देखा जा सकता है कि पाश्चात्य समाज में तदर्थ संबंधों का चलन है, अधिकांश रिश्ते अस्थायी ही होते हैं। यहाँ भारतीय संस्कृति की तरह संबंधों को निभाने का चलन नहीं दिखाई पड़ता। लेखिका ने आर्थिक तंत्र के कारण सामाजिक स्थितियों में आने वाले बदलाव और उससे रिश्तों पर पड़ने वाले प्रभाव का चित्रण किया है। आज रिश्ते भावुकता से नहीं उपयोगिता और व्यावहारिकता के तर्कों से निर्धारित होने लगे हैं। यह बहुत ही दुःखद और विचारणीय प्रसंग है।

<u>संदर्भ ग्रन्थ सूची</u>

आधार ग्रन्थ:-

1. प्रियंवदा, उषा: ज़िन्दगी और गुलाब के फूल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, 1961
2. प्रियंवदा, उषा: एक कोई दूसरा, अक्षरा प्रकाशन, दिल्ली, 1966
3. प्रियंवदा, उषा: मेरी प्रिय कहानियाँ, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, 1974
4. प्रियंवदा, उषा: कितना बड़ा झूठ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 2008,
5. प्रियंवदा, उषा: शून्य तथा अन्य रचनाएँ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1996
6. प्रियंवदा, उषा: पचपन खम्बे लाल दीवारें, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1999
7. प्रियंवदा, उषा: रूकोगी नहीं राधिका, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2000
8. प्रियंवदा, उषा: शेषयात्रा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2008
9. प्रियंवदा, उषा: अन्तर्वंशी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2000
10. प्रियंवदा, उषा: भया कबीर उदास, राजकमल प्रकाशन, 2007
11. प्रियंवदा, उषा: नदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2017
12. प्रियंवदा, उषा: अल्पविराम, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2019

सहायक ग्रन्थ:-

1. एतरेय ब्राह्मण 3/33/5
2. पाण्डेय, प्रेम प्रकाश: आप्रवासी श्रमिक (पूर्वी उत्तर प्रदेश से दिल्ली की ओर), नॉथर्न बुक सेंटर, दिल्ली, 1990
3. स्नातक, डॉ. सुरेन्द्र देव: लघु सिद्धांत कौमुदी, चौखम्बा ओरिएण्टल, दिल्ली 2012
4. जोशी, रामशरण (संपा): भारतीय डायस्पोरा : विविध आयाम, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2014

5. कौर, डॉ. अकाल अमृत: प्रवासी पंजाबी नावल द इतिहास, चेतन प्रकाशन, लुधियाना, 2013
6. गोयनका, कमल किशोर: हिंदी का प्रवासी साहित्य, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, 2017
7. देसाई, डॉ. बापूराव: प्रवासी साहित्य का इतिहास : सिद्धांत एवं विवेचन, पराग प्रकाशन, कानपुर, 2020
8. फ़िरोज़, डॉ. एम. (संपा): प्रवासी महिला कथाकार, सारंग प्रकाशन, वाराणसी, 2018
9. उपाध्याय, डॉ. वसुंधरा (संपा): हिंदी साहित्य और प्रवासी विमर्श, साहित्य संचय प्रकाशन, दिल्ली, 2019
10. मिलिंद, सत्यप्रकाश: हिंदी की महिला साहित्यकार, रूपकमल प्रकाशन, दिल्ली 1960
11. अवस्थी, देवी शंकर: विवेक के रंग, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, 1965
12. सिंह, नामवर: कहानी नयी कहानी, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली, 2016
13. ढींगरा, सुधा ओम: वैश्विक रचनाकार : कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ, भाग- 02, शिवना प्रकाशन, सिहोर, मध्यप्रदेश, 2014
14. वार्ष्णेय, लक्ष्मीसागर: आधुनिक कहानी का परिपार्श्व
15. गवली, डॉ. कल्पना (संपा): हिंदी प्रवासी कथा साहित्य (भाग-01), माया प्रकाशन, कानपुर, 2018
16. डॉ. रमा (संपा): प्रवासी हिंदी साहित्य विविध आयाम, साहित्य संचय, दिल्ली, 2017
17. कँवल, जे. एस.: सवेरा, स्टार पब्लिकेशन, प्रा. लि.,दिल्ली, 1972
18. कुमारी, डॉ. कमलेश (संपा): प्रवासी कथाकार तेजेंद्र शर्मा मुद्दे और चुनौतियाँ, साहित्य संचय प्रकाशन, दिल्ली, 2018
19. सक्सेना, उषा राजे (संपा): प्रवास में, ज्ञान गंगा, जयपुर, राजस्थान, 2002
20. माथुर, दिव्या: आक्रोश, हिंदी बुक सेंटर, दिल्ली, 2000
21. गवली, डॉ. कल्पना (संपा): हिंदी प्रवासी कथा साहित्य (भाग-02), माया प्रकाशन, कानपुर, 2018
22. बेदी, सुषम: हवन, पेंगुइन प्रकाशन, हरयाणा, 2020

23.ढींगरा, सुधा ओम: वैश्विक रचनाकार : कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ, भाग- 01, शिवना प्रकाशन, सिहोर, मध्यप्रदेश, 2013

24.ढींगरा, सुधा ओम: कौन-सी ज़मीन अपनी, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2010

25.ढींगरा, सुधा ओम: कमरा नंबर 103, हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर, उत्तर प्रदेश, 2013

26.सक्सेना, पुष्पा: वह साँवली लड़की, यात्री प्रकाशन, दिल्ली, 1995

27.जैन, निर्मला: कथा समय में तीन हमसफ़र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2015

28.खेतान, प्रभा: उपनिवेश में स्त्री, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2016

29.Rushdie, Salman: East, West, Vintage Publication, London

30.Pataki, Eva: Caught between two worlds : The confusion of cultural Identity in Three British Asian Novels, University of Debrecen, 2015

31.वार्ष्णेय, डॉ. लक्ष्मीसागर: द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, राजपाल एंड संस, दिल्ली, 1973

32.अवस्थी, देवी शंकर: नयी कहानी : संदर्भ और प्रकृति, राजकमल प्रकाशन, 1973

33.मदान, डॉ. इंद्रनाथ: आधुनिकता और हिंदी साहित्य, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1973

शब्दकोश:-

1. आप्टे, वामन, शिवराम: संस्कृत शब्दकोश
2. वाचस्पत्यम् भाग - 06, चौखम्बा संस्कृत ऑफिस, वाराणसी
3. मानक हिंदी कोश, भाग - 03, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2006
4. बुल्के, फादर कामिल: अंग्रेज़ी-हिंदी कोश, एस. चंद एंड कंपनी, दिल्ली, 2004

पत्रिकाएँ:-

1. राय, विभूतिनारायण: प्रवासी विशेषांक, वर्तमान साहित्य (पत्रिका), जनवरी-फरवरी, 2006
2. शर्मा, जया: प्रवासी हिंदी लेखन में 'नॉस्टेल्जिया बनाम यथार्थ' (शोध आलेख), कमल, अरुण (सं.), आलोचना पत्रिका, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, अंक 47, अक्टूबर- दिसंबर, 2012
3. नंदन, श्याम, हिंदी में लिखना एक तरह से भारत से जुड़ना है : सुषम बेदी (साक्षात्कार), पाण्डेय, प्रो. नन्द किशोर (प्रधान संपा), प्रवासी जगत (पत्रिका), आगरा, केंद्रीय हिंदी संस्थान, अक्टूबर-दिसम्बर 2018
4. यादव, राजेंद्र: कि आए कौन कहाँ से हम? (संपादकीय), यादव, राजेंद्र (सम्पादक), हँस (पत्रिका), नई दिल्ली, अक्षर प्रकाशन, मई, 2007
5. प्रसाद, इला, दूर देश के लेखक (आलेख), जनसत्ता (समाचार पत्र), दिल्ली, दिनांक, 12 जुलाई, 2012
6. प्रियंवदा, उषा: विस्मृति के द्वार (संस्मरण), विभोम स्वर (पत्रिका) ढींगरा, सुधा ओम (प्रमुख सम्पादक), मध्यप्रदेश, अक्टूबर-दिसम्बर, 2021,
7. यादव, डॉ. ललिता: स्त्री चेतना के सोपान : सुषमा से शिंजनी तक, अपनी माटी (ई-पत्रिका), यादव, जितेंद्र (संपा), अंक 38, अक्टूबर-दिसंबर, 2021
8. मिरोठा, मुकेश कुमार: प्रवास और सूरीनाम का हिंदी साहित्य (आलेख), पाण्डेय, नन्द किशोर (प्रधान संपा.), प्रवासी जगत (पत्रिका), केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा
9. डॉ. विवेकानंद: फीजी में रामायण परंपरा (आलेख), दीपक, देवेंद्र (संपा.), साक्षात्कार पत्रिका, भोपाल : साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद, मई -जून संयुक्त अंक, 2007
10. कर्नावट, डॉ. जवाहर: आपसी टकराव व खेमेबाजी के कारण हिंदी में विश्व स्तरीय रचनाएँ नहीं - अभिमन्यु अनत (साक्षात्कार), शांडिल्य, नरेश (संपा.) : अक्षरम संगोष्ठी (पत्रिका), नई दिल्ली, जनवरी-मार्च, 2006

11.कुमार, शरद, फीजी में हिंदी: नये आयाम (आलेख), सुखलाल, गंगाधर सिंह गुलशन (संपा.) विश्व हिंदी पत्रिका, 2010 (पत्रिका), मॉरीशस : विश्व हिंदी सचिवालय, 2010,

12.मुसीव्वर, रहमान: उन्होंने साहित्य की अपनी परम्परा तैयार की है कमलेश्वर (साक्षात्कार), सिंह, डॉ. नमिता (प्रधान संपा.), वर्तमान साहित्य (पत्रिका), अलीगढ़, मई संयुक्त अंक, 2006

वेबसाइट्स:-

1. Diaspora - defination, meaning and synonym https://www.vocabulary.com/dictionary/diaspora#:~:text=A%20diaspora%20is%20a%20large,places%20all%20over%20the%20
2. https://www.vocabulary.com/articles/chooseyourwords/emigrate-immigrate-migrate/#:~:text=Emigrate%20means%20to%20leave%20one's,the%20sentence's%20point%20of%20view.

परिशिष्ट

उषा प्रियंवदा अमेरिका में रचित प्रवासी हिंदी साहित्य की महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। लगभग पाँच दशकों से अमेरिका में रहने के पश्चात् अपने प्रवास जनित अनुभवों को कथा साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया। उषा प्रियंवदा ने काफ़ी छोटी उम्र से ही कहानियाँ लिखना आरम्भ किया। एक बड़ी लेखिका के रूप में उनकी ख्याति का आधार, नयी कहानी के दौर में उनके द्वारा लिखी गयी 'वापसी' नामक कहानी से माना जाता है। उनकी कई कहानी संग्रह और उपन्यास समय-समय पर प्रकाशित हुए हैं। 1970 के बाद लिखी गयी कहानियाँ विदेशी परिवेश की उपज हैं। उन्होंने अपने कथा साहित्य में प्रवासी भारतीय पात्रों के जीवन से जुड़े विभिन्न पक्षों को रेखांकित किया। उनके कथा साहित्य के केंद्र में प्रवासी भारतीय स्त्री हैं जो संघर्ष कर उस समाज में अपनी पहचान बनाती हुई दिखाई पड़ती है। इसी क्रम में 'अन्तर्वंशी' उपन्यास को रखा जा सकता है।

शोध कार्य करने के दौरान 'अन्तर्वंशी' उपन्यास में वर्णित कई प्रसंगों से संबंधित जिज्ञासाओं ने जन्म लिया जिसका उत्तर प्राप्त करने के लिए शोधार्थी ने लेखिका के साथ ईमेल द्वारा संपर्क स्थापित किया गया। लेखिका से पूछे गए प्रश्न व प्राप्त उत्तर प्रस्तुत हैं –

1. प्रवासी जीवन को आप किस तरह देखती हैं ?

कुछ सुख, कुछ सुविधाएँ और कुछ अकेलापन और उदासी, मैं प्रवासी जीवन को इस तरह देखती हूँ। कोई ग्लैमर नहीं है।

2. प्रवास के दौरान भारतीय स्त्री कैसा अनुभव करती है ?

मैंने यहाँ रहते हुए चार पीढ़ियों को देखा है। मेरे समय की स्त्रियाँ अपने घर बार में प्रसन्न रहती थीं। अधिकतर पति का दामन पकड़ कर आयीं थीं। ससुराल से छुटकारा पाकर प्रसन्न रहती थीं। अमेरिका की सुख सुविधाओं में तुष्ट। उनके बाद की पीढ़ी में शिक्षित स्त्रियाँ थीं, कुछ स्त्रियाँ नौकरी करने लगी थीं लेकिन पति के शासन में रहते हुए, भारतीय परिपाटी के अनुसार। तीसरी पीढ़ी में सुंदर, पढ़ी-लिखी लड़कियाँ थीं जो अमेरिका की आबोहवा से परिचित हो गयी थीं। इस पीढ़ी में दोनों ओर से डाइवोर्स होने लगे थे। चौथी पीढ़ी उनकी है जो पढ़ी लिखी हैं और अपनी काबिलियत पर भरोसा रखती हैं परन्तु कुछ का उद्देश्य यहाँ इंटरनेट के द्वारा विवाह के लिए अमेरिकन नागरिक खोजना है और यहीं रह जाना है। यह काम बहुत सारे लड़के भी कर रहे हैं जो सालों से ग्रीन कार्ड का इंतज़ार कर रहे हैं। मेरा यह अनुभव है कि यह पहली पीढ़ी से अलग है। यह पूरी तरह से अमेरिका और उसके भौतिकतावादी समाज को अपना चुकी है। मुझे इस पीढ़ी पर तरस आता है क्योंकि यह अपनी पहचान, भारतीयता को खो चुकी है और नहीं समझ पाते कि भले ही यह अमेरिकन को प्रभावित कर दें लेकिन उनके समाज का हिस्सा कभी नहीं बन सकते।

3.'अन्तर्वंशी' की नायिका वाना को आप किस तरह देखती हैं ?

मेरे विचार में वाना भारतीय ट्रेडिशनल स्त्री है। वह सब कुछ स्वीकार करती जाती है परन्तु उसके जीवन में एक पल ऐसा आता है, जब उसकी भावनाएँ और इच्छाएँ इतनी प्रबल हो जाती हैं कि वह समाज, पति, बच्चे, सबको त्याग कर अपनी इच्छा पूरी करना चाहती है। उसे बोध होता है कि वह मन और प्राणों से राहुल को प्यार करती है और उस क्षण वह उसे पाने के लिए उन गोपियों की तरह बन जाती है जो कृष्ण की वंशी सुन कर तन-मन, सुध-बुध, रंभाती गायों, सास और समाज का भय छोड़कर वन की ओर भागने लगती है जहाँ कृष्ण वंशी बजा रहे होते हैं। यह आईडिया मैंने सूरदास के एक पद से लिया है। इसलिए इस पुस्तक का नाम 'अन्तर्वंशी'

है, अर्थात् हमारे भीतर बजने वाला संगीत, वह भाव जिसे हम परिवार और समाज के भय से नहीं सुनना चाहते हैं। वाना अंततः अपने ह्रदय की पुकार सुनती है और राहुल का वरण करती है। आलोचकों द्वारा वाना की खूब आलोचना हुई, लोगों ने उसे कमजोर और स्वार्थी स्त्री कहा लेकिन मेरी नज़र में वाना स्वार्थी और कमज़ोर स्त्री नहीं है। राहुल के साथ ऑस्ट्रेलिया जाने के बजाय वह शिवेश का इंतज़ार करती है उसे सब सत्य बताना चाहती है। यह उसकी शिवेश के प्रति ईमानदारी ही है।

4. अमेरिकी समाज में प्रवासी भारतीय स्त्री के जीवन में आते हुए बदलाव को आप किस तरह देखती हैं या कहें कि आपसे उनकी क्या अपेक्षाएँ हैं ?

सबसे पहले हमारे समाज में लड़कियों पर लीक पकड़ कर चलने का इतना दबाव रहता है कि वह खुल कर अपने भविष्य के बारे में सोच तक नहीं सकती। वाना भी ऐसी ही एक लड़की है, जिसे अपनी जीवन दिशा निर्धारित करने का अवसर नहीं दिया गया। यदि वह पति के साथ विदेश न आती तो जीवन पर्यन्त उन्हीं लीकों पर चलती रहती। बहुत सी स्त्रियाँ यहाँ आकर भी उन्हीं बेड़ियों में जकड़ी रहती हैं, न कुछ पढ़ती हैं, न अपने आस-पास के समाज से कुछ सीखती हैं। अपनी इच्छाओं को पाने के लिए साहस चाहिए वाना यह करती है, और अंत में अपने 'स्व' को पा लेती है। जब तक स्त्री आर्थिक और वैचारिक रूप से परंपरा से बँधी रहेगी उसे व्यक्तिगत सुख नहीं मिलेगा, इसके पीछे समाज और परिवार का भय रहता है जो पुरुषों में भी पाया जाता है। हमारे लेखक और लेखिकाएँ भी परंपरा को निजी जीवन में पालते हुए नारे बाज़ी करते हैं, वह सिर्फ़ नारी मुक्ति के बारे में लिखते हैं। विदेश में यदि पति या पत्नी विवाह को outgrow कर जाते हैं, तो बरसों बाद भी बंधनमुक्त होने में नहीं हिचकिचाते। भारत में भले ही नई पौध वस्त्र बदल ले देखना यह है कि कितनों में आर्थिक रूप से स्वतंत्र होकर अपनी जीवन दिशा निर्धारित करने का

साहस है। जब अधिकांश लोगों में यह साहस आयेगा तभी हमारा समाज स्त्रियों के प्रति सदय होगा।

5. पाश्चात्य समाज में दाम्पत्य संबंध के बदलते आयाम को आप किस तरह देखती हैं ?

स्त्रियों को अपने शरीर और आत्म सम्मान की रक्षा करना आया, यह शुभ लक्षण है।